दिव्य जीवन प्रसंग

(शिक्षाप्रद विशिष्ट घटनाएं)

लेखक :

कन्हैयालाल गोयल

हिन्दी सेवा सदन, मथुरा.

प्रकाशक :
हिन्दी सेवा सदन
हालन गंज, मथुरा, (उ० प्र०) 281001

□

लेखक :
कन्हैयालाल गोयल

□

नवीन संस्करण : नवम्बर, 1987 ई०

□

□

मूल्य : 5-00
पाँच रुपये मात्र

□

मुद्रक :
भाषा भवन प्रेस, मथुरा.

□

पुस्तक के विषय में :

कुछ वन्य-जीव जन्म लेने के कुछ देर बाद ही चलने-फिरने लगते हैं एवं बहुत-से जल-जन्तु जन्म के तुरन्त बाद ही तैरने लग जाते हैं, किन्तु इसके विपरीत सब प्राणियों में श्रेष्ठ कहलाने वाला मानव !

मानव-शिशु अत्यन्त निरीह व निर्बल अवस्था में, सहायता के लिए चीखता-चिल्लाता हुआ इस धरा-धाम पर अवतरित होता हैं। बिना मानव-सहायता के उनका जीवन धारण कर पाना भी असम्भव होता है।

फिर भी सामान्य पशु-पक्षी व अन्य जल-जन्तु आदि अपनी उछल क्रूद, भाग-दौड़, उड़ान तथा तैराकी-कला का विशेष विकास नहीं कर पाते। जन्म से मृत्यु पर्यन्त उनकी सभी विद्याओं का ज्ञान प्रायः जहाँ का तहाँ ही विद्यमान रहता है, ठीक जहाँ का तहाँ ही बना रहता हैं, जबकि मानव-सहायता पाकर मानव-शिशु ज्यों-ज्यों बढ़ता जाता है त्यों-त्यों वह विभिन्न विद्याओं व कलाओं के द्वार पर दस्तक देने लग जाता है। जब वह तैरना सीखता है तो तैराकी में इतना निपुण, इतना पारंगत हो जाता है कि उसकी क्षमता और योग्यता के आगे बड़े-बड़े दिग्गज जल-जन्तु भी कान टेक जायें। जब वह उड़ान भरना शुरू करता है तो अन्तरिक्ष की उन ऊँचाइयों को छू लेता है जिनको सबसे अधिक उड़ाकू समझे जाने वाले पक्षियों के पुरखे भी न छू पाये हों।

इसका कारण !

इसका कारण है—मनुष्य का विवेक ! अपने से बड़ों का अनुकरण करने की उसकी विकासशील प्रवृत्ति !

'महाजनो येन गतः सः पन्था'

जिस मार्ग पर चलकर अन्य सामान्य व्यक्ति महापुरुष की श्रेणी में पहुँचे हों उसी मार्ग का चुनाव करने की योग्यता !!

मानव में विकास की सारी सम्भावनायें विद्यमान होने पर भी किसी महामानव के जीवन का ज्यों का त्यों अनुकरण कर पाना तो कठिन ही नहीं, वरन असम्भव ही है. किन्तु एक सफल व्यक्ति और अच्छा इन्सान बनने के लिए विभिन्न महापुरुषों के जीवन में घटी कुछ विशिष्ट घटनाओं से प्रेरणा लेकर जहाँ विनम्रता, ईमानदारी, सचाई, उदारता, क्षमाशीलता, कृतज्ञता, धैर्य, प्रेम, सौजन्य, भ्रातृ-भाव आदि मानवीय सद्गुणों का समुचित विकास किया जाना सहज सम्भव है, वहीं क्रोध, दैन्य, अहंकार, अवसाद, दुर्विचार और कुचेष्टा आदि दुर्गुणों का त्याग भी सम्भव है।

इस पुस्तक-सूत्र में विभिन्न महात्माओं के जीवन के उन्हीं रक प्रसंग रूपी सुवासित पुष्पों को इस हार्दिक शुभ-कामना के साथ पिरोया गया है कि इसके प्रभाव से पाठकगण अपने जीवन में आगे बढ़ें। शुभ मस्तु !

कर्तव्य-परायणता

फिलीपाइन्स के राष्ट्रपति रेमन मेगसे ने जब यह समाचार सुना कि विदेश से उपयुक्त सामग्री समय पर न पहुँच पाने पर भी निर्माण-विभाग का प्रमुख इन्जीनियर निर्धारित समय के भीतर ही विशाल बाँध को पूरा करने में जुटा है—तो उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई।

कार्य का अवलोकन करने और इन्जीनियर का उत्साह बढाने के उद्देश्य से एक दिन राष्ट्रपति निर्माण-स्थल पर जा पहुँचे। सचमुच निर्माण-कार्य जोरों पर था। प्रमुख इंजीनियर अपने पद की गरिमा को भुलाकर सामान्य खलासी की तरह काम में जुटा हुआ था। उसके कपड़े मैले हो रहे थे और मस्तक पर कठिन परिश्रम के फलस्वरूप पसीने की बूंदें झलक रहीं थी। विदेशों से जो पम्प आने थे, उनके स्थान पर पुराने अमरीकी डीजल-ट्रकों का प्रयोग अत्यन्त सूझ-बूझ से किया गया था। राष्ट्रपति का सीना हर्ष से फूल उठा।

राष्ट्रपति ने इंजीनियर को बुलाकर उससे पूछा—'पम्पों के स्थान पर डीजल-ट्रकों का प्रयोग करने के लिए क्या आप ही जिम्मेवार हो ?'

'हाँ श्रीमान !' किंचित घबराये हुए स्वर में इंजीनियर ने मम्रतापूर्ण स्वर में कहा।

'अपना दाहिना हाथ ऊपर उठाओ !' राष्ट्रपति ने अत्यन्त रौबीले स्वर में आदेश दिया।

'हे भगवान ! क्या होने वाला है ?' इंजीनियर मन-ही-मन कांप गया। डरते-सहमते उसने अपना हाथ ऊपर उठा दिया।

मधुर मुस्कान के साथ राष्ट्रपति ने कहा—'आपकी बफादारी, नैतिकता, सूझ-बूझ और उत्तरदायित्व निभाने की भावना से प्रभावित होकर मैं आपको निर्माण-विभाग के उप-सचिव की शपथ दिलाता हूँ। मेरे साथ शपथ दुहराओ—....'

सबसे बड़ी गलती

एक व्यक्ति अपने किये कार्य से पूरी तरह सन्तुष्ट न हो पाता था। वह अपने मन में ऐसा अनुभव करता रहता था कि उसके कुछ कामों में गलतियाँ रह जाती हैं। एक दिन वह सर बेंजामिन फ्रेंकलिन के पास पहुँचा और उन्हें अपनी समस्या बताई।

उसकी बात सुनकर फ्रेंकलिन हँसे। फिर बोले—'दुनियाँ में सबसे बड़ी गलती है निठल्ला बैठना। जो इस सबसे बड़ी गलती को नहीं करता, उससे छोटी गलतियाँ तो होंगी ही, क्योंकि वह इन्सान है, भगवान नहीं।'

●

तन्मय

जैसे-तैसे सामान्य श्रेणी से यात्रा करने लायक धन जुटाकर साहसी किशोर फ्रेंक हैरिस अमेरिका की यात्रा पर

अकेला चल पड़ा। जहाज की डेक के पास ही उसे सीट मिली थी। वहाँ उसे जहाज के डाक्टर से बातचीत का अवसर मिला। डाक्टर उसकी बातों से अत्यन्त प्रभावित हुआ और उसे अपनी केबिन में स्थान दे दिया। उस केबिन में दो आलमारियाँ थीं और उन आलमादियों में विभिन्न विषयों की पुस्तकें रखी हुई थीं। फ्रैंक हैरिस ने उन पुस्तकों को पढ़ने की डाक्टर से आज्ञा चाही तो उसने प्रसन्नता पूर्वक आज्ञा दे दी।

कुछ पुस्तकों को पढ़ने के बाद हैरिस ने डाक्टर से कहा—'सर! ये पुस्तकें बहुत ही अच्छी हैं। कभी पैसे जुटा पाया, तो मैं भी ऐसे मूल्यवान ग्रन्थ खरीदकर पढ़ूँगा।'

डाक्टर ने सोचा हेरिस आत्म-प्रशंसा कर रहा है, भला इसमें इतनी योग्यता कहाँ, जो इन विशद ग्रन्थों का भाव समझ सके। हेरिस की परख करने के लिए डाक्टर ने एक पुस्तक (जिसे फ्रैंक हेरिस पढ़ चुका था) उठाई और उसके पन्ने उलट कर उसमें से कुछ प्रश्न पूछ डाले।

फ्रैंक हेरिस ने डा० के सब प्रश्नों के सही-सही उत्तर तो दिए ही, कुछ प्रसंगों को तो अक्षरशः ज्यों का त्यों सुना दिया। यह देखकर डाक्टर ने आश्चर्य से दाँतों तले उंगली दबा ली। उसने चकित होकर पूछा—पुस्तक के इन स्थलों को तुमने कितनी बार पढ़ा है, जो तुम्हें ये कण्ठस्थ हो गये हैं ?'

केवल एक बार ही पढ़ा है सर! यदि तन्मय होकर (डूबकर) पढ़ा जाय तो याद रखने के लिए एक बार पढ़ना ही काफी है सर!

हेरिस की स्मरण-शक्ति के उस चमत्कार से न केवल डाक्टर ही प्रभावित हुआ, वरन जहाज के अन्य बहुत से यात्री भी चकित हो उठे। उन्होंने आपस में चन्दा किया और हेरिस के लिए न केवल प्रथम श्रेणी का टिकिट खरीदकर दिया बल्कि बीस डालर जेब-खर्च के लिए अलग से भी दिए।

हौसला

एक फौजी सिपाही लंगड़ा था। एक दिन उसकी टाँग को देखकर उसके साथी हँसने लगे तो उनकी हँसी में हँसी मिलाता हुआ वह बोला—'मैं कमर कसकर युद्ध करने वाला बहादुर सिपाही हूँ, पीठ दिखाकर भागने वाला कायर नहीं। मेरी टाँग को क्या देखते हो, समय आने पर मेरे हौसले को देखना।'

प्यार की भाषा

घटना सन् 1922 की है। महात्मा गाँधी को छः वर्ष का कारावास भोगने के लिए यर्वदा जेल भेजा गया। जेल सुपरिण्टेण्डेण्ट अंग्रेज था। वह गांधीजी को अंग्रेजी साम्राज्य का सबसे बड़ा शत्रु मानता था। इसलिये बापू के लिए जब सेवक देने का अवसर आया तो उसने एक काले-कलूटे अफ्रीकी को बापू की सेवा में नियुक्त किया। वह अफ्रीकी न तो हिन्दी भाषा समझता था और न अंग्रेजी। केवल इशारों से ही उससे काम लिया जा सकता था।

गाँधी जी सुपरिण्टेण्डेण्ट की धूर्त्तता समझ गये। फिर भी उन्होंने कोई ऐतराज नहीं किया। उस अफ्रीकी से ही अपना

काम चलाने लगे। एक दिन उस अफ्रीकी को बिच्छू ने काट लिया तो वह भागा-भागा गाँधी के पास पहुँचा और बिच्छू के काटे हुए स्थान को दिखाकर उनसे सहायता माँगने लगा।

गाँधीजी ने तुरन्त काटे हुए स्थान पर मुँह लगाया और जहर चूसने लगे। कुछ ही पलों में उसकी जलन शान्त हो गई। फिर गाँधीजी उसे कुछ दवायें भी दीं और उस दिन काम न करने की छूट भी दी।

उस अफ्रीकी को अपने जीवन में किसी व्यक्ति से इतना प्यार न मिला था। उस घटना के बाद तो वह बापू का अनन्य भक्त ही बन गया और बड़े मनोयोग से उनकी सेवा करने लगा।

जेल अधिकारी ने तो गाँधीजी को परेशानी में डालने के लिए ही उस अफ्रीकी को उनकी सेवा में रखा था, किन्तु वहाँ तो ठीक उसके विपरीत ही परिणाम निकला।

मृत्युञ्जय

यूनान के मन्त्री का जन्म-दिन था। उसके घर पर विशाल भोज व संगीत का आयोजन था। राज्य के अच्छे से अच्छे गायक और वादक अपनी कला दिखाने के लिए आ जुटे थे। सितार की मोहक झंकार शुरू हो चुकी थी, तबलची अपनी मादक अदा से तबले पर थाप देने लगा था। तभी अचानक

सेना ने मन्त्री के भवन को चारों ओर से घेर लिया। एक सेनाधिकारी मन्त्री के पास आया और उससे बोला—'आपके विरुद्ध राज्यद्रोह का अपराध सिद्ध हुआ है, आज शाम को राजमहल के सामने आपको फाँसी दी जावेगी।'

सेना-अधिकारी की यह बात सुनी तो उत्सव का रंग फीका हो गया। कुछ क्षण पहले जो चेहरे हर्ष और उल्लास में डूबे थे, उन पर विषाद की काली छाया आ घिरी। मन्त्री के बच्चे व पत्नी रोने-चिल्लाने लगे। वीणा-वादकों ने अपनी वीणा के तार मिलाना बन्द कर दिया, गायकों की टोली को सांप सूँघ गया, सजी-धजी नर्तकियों ने अपने पैरों से नुपूर खोलने शुरू कर दिये।

मन्त्री ने यह देखा तो मुस्कराते हुए कहा—'अभी फाँसी लगने में दस घण्टे की देर है, फिर अभी से मातम क्यों मनाया जाय ? जब मुझे मरना ही है तो जीवन की जो घड़ियाँ शेष हैं, उन्हें पूरे हर्ष और उल्लास के साथ बिताने दो।

भोज की तैयारियाँ जोर-शोर से चलने दो। नाच-गान और तेज कर दिया जाये ताकि मेरे बिछुड़ने की घड़ियाँ आप लोगों की यादगार बन जाय।'

मन्त्री की यह बात सुनी तो खलबली कुछ शान्त हुई। नर्तकी, वादक, गायक आदि पुनः अपने यन्त्रों को संभालने लगे। हलवाइयों ने चूल्हे में लकड़ी डालना शुरू कर दिया।

मन्त्री का ऐसा मनोबल देखा तो सेना का अधिकारी आश्चर्य-चकित हो उठा। वह उल्टे कदम लौटा और राजा के पास पहुँचकर उसे सारी बात बताई। सुनकर राजा को भी कम आश्चर्य न हुआ।

भोज में सम्मिलित होने का राजा के पास निमन्त्रण था ही, उसने अपने मन ही मन निश्चय किया कि वह शाम को

मन्त्री द्वारा दी जा रही दावत में अवश्य सम्मिलित होगा। वह स्वयं अपनी आँखों से मन्त्री का हौसला देखेगा।

ऐसा सोचकर राजा किसी अन्य काम को हाथ में लेना ही चाहता था कि तभी राज्य का न्यायाधिकारी हाँफता-काँपता हुआ राज्य-सभा में उपस्थित हुआ और व्यथित स्वर में बोला-'महाराज, गजब हो गया!'

'क्यों, क्या बात है? आप इतने घबड़ाये हुए क्यों है?'

'महाराज, राज्य-विरोधी षड़यन्त्र में मन्त्री के नाम वाला एक दूसरा आदमी दोषी है, जबकि फाँसी का हुक्म मेरी अदालत से मन्त्री के नाम जारी हो गया है। अब कृपा करके मन्त्री जी की जान बचाइये।'

न्यायाधीश की बात सुनकर राजा मन ही मन हँसा, और उससे बोला—'घबराइये नहीं, मन्त्री बच जायगा।'

राजा से यह आश्वासन पाकर न्यायाधिकारी की जान-में जान आई। वह न्यायालय को लौट गया।

शाम को राजा समय से पहले ही मन्त्री के घर पहुँचा। वहाँ मौज-मस्ती का समा बँधा था। मन्त्री ने राजा का सदा की भाँति स्वागत किया तो राजा बोला, 'आपको यह सूचना तो मिल ही गई होगी कि आज शाम को आपको फांसी लगनी है?'

'हाँ-महाराज!'

'फिर भी आप राग-रंग में व्यस्त है? मौत से डर नहीं लगता आपको?"

'मौत से डर कैसा महाराज? वह तो जीवन का ही एक छोर है। जीवन को तो अच्छी तरह जी-लूँ ताकि मौत के फन्दे को हँसते हुए गले लगा सकूँ। इसलिए आज अन्तिम बार मैं और आप साथ साथ भोजन करलें। मुस्कराते हुए मन्त्री ने कहा।

तभी राजा ने न्यायाधिकारी की भूल की बात मन्त्री को सुनाकर कहा—'अभी तो न जाने कितनी बार मैं और आप साथ-साथ भोजन करेंगे।'

अमूल्य हास्य

अमेरिका निवासी प्रसिद्ध धनी और क्रीड़ा-प्रेमी वाण्डर विल्ट किसी कार्यवश इटली के प्रमुख नगर कुस्तुन्तुनिया गये हुये थे। संयोग से उन्हीं दिनों फ्रान्स के अभिनेता 'काकलिन' भी कुस्तुन्तुनिया आये हुए थे।

जब विनोदी और रसिक स्वभाव वाले वाण्डर विल्ट ने यह बात सुनी तो उसने कुस्तुन्तुनिया की प्रसिद्ध नदी में नौका-विहार के लिए काकलिन को आमन्त्रित कर दिया।

वाण्डर बिल्ट ख्याति-प्राप्त व्यक्ति थे। ऐसे व्यक्ति का निमन्त्रण पाकर काकलिन प्रसन्न हो उठा और साथियों सहित निश्चित समय पर नदी तट पर जा पहुँचा। विशेष रूप से सुसज्जित नौका पर काकलिन और उसकी पार्टी के स्वागत के लिए वाण्डर बिल्ट प्रतीक्षा-रत थे ही। अत्यन्त हर्षोल्लास के साथ नौका चल पड़ी।

नदी के मध्य शान्त वातावरण में काकलिन और उसकी पार्टी ने वाण्डर बिल्ट के मनोरंजन हेतु एक अत्यन्त रोचक रूपक प्रस्तुत किया। रूपक के कारुणिक प्रसंगों को सुनकर वांडर बिल्ट के नेत्रों से अश्रधारा वह उठती और हास्य प्रसङ्गों पर

हँसते-हँसते उसके पेट में बल पड़ जाते। रूपक की समाप्ति पर वाण्डर बिल्ट ने उस घटना को अपने जीवन की सबसे अधिक मूल्यवान और सुखकारी बताते हुए काकलिन की जी-खोलकर प्रशंसा की।

इतने विशिष्ट व्यक्ति द्वारा अपनी प्रशंसा सुनकर काकलिन को भी कम खुशी न हुई। वाण्डर बिल्ट को हार्दिक धन्यवाद देकर वह अपने ठिकाने पर चला गया।

अमेरिका पहुँचकर श्री बिल्ट ने 3000 डालर का चैंक संलग्न करते हुए मि० काकलिन को पत्र लिखा 'प्रियवर! उस दिन के संयोग को मैं जीवन-भर न भुला सकूँगा। अपने कलापूर्ण अभिनय से आपने मुझे छः बार रुलाया था। उस रुलाई के 600 डालर तथा बारह बार हँसाया था, उस हास्य के 2400 डालर। इस प्रकार 3000 डालर का चैंक संलग्न है, स्वीकार करें। क्योंकि मानव-स्वास्थ्य के लिए रुदन की अपेक्षा हास्य अधिक उपयोगी है अतः मूल्यांकन में अंतर किया।'

उस पत्र का उत्तर काकलिन ने यों दिया —'मान्यवर, आपने मेरा अभिनय पसन्द किया, इसके लिये हृदय से आभारी हूँ। आपके भेजे 3000 डालर के चैक को अपनी कला का पुरस्कार मानकर शिरोधार्य कर रहा हूँ न कि हास्य या रुदन का मूल्य मानकर। क्योंकि हास्य या रुदन तो प्रकृति द्वारा मानव को अमूल्य देन हैं। इनका मूल्य भला डालरों में कैसे आँका जा सकता है ? धृष्टता के लिए क्षमा-याचना सहित— काकलिन।

ऋण

उसे सामान्य वेतन ही मिलता था। किन्तु उस वेतन के अनुसार ही उसने अपने परिवार के खर्च का बजट भी बना रखा था। दूसरों की फिजूल—खर्ची न तो कभी उसे लालायित कर पाती और न कभी उसमें हीनता का भाव ही पैदा कर पाती थीं। वह सदैव प्रसन्न-चित्त रह कर अपने कार्य को पूरी कुशलता और निष्ठा के साथ करता था। वह अपने वर्तमान से पूरी तरह सन्तुष्ट था।

किन्तु, उसकी पत्नी ठीक उसके उल्टे स्वभाव वाली थी। जब वह अपनी पड़ोसिनों, अपनी सहेलियों की नित्य-नये वस्त्र बदलते देखती तो ईर्ष्या और ग्लानि से उसका कलेजा मुँह को आने लगता। वह अपने पति को बार-बार कोसती—'जब अन्य लोग रिश्वत लेकर माला-माल हो रहे है और सुखी जीवन जी रहे हैं, तो तुम क्यों नहीं रिश्वत लेना शुरू कर देते ?'

अपनी पत्नी के ताने सुनने की आदत पड़ चुकी थी, अतः वह उसकी बातों को गहराई से न लेता और हँसकर ही उड़ा जाता। पत्नी भी समझती थी कि चिकने घड़े पर पानी का असर होने वाला नहीं, किन्तु अपनी आदत से वह भी मज-बूर थी।

किसी विशेष त्योहार के अवसर पर उसने नयी चाल चलने की सोची। वह अपने पति से प्यार-पूर्वक बोली-'क्योंजो,

त्यौहार पर मिठाइयां तो सभी बनाते है, मैं भी मिठाइयाँ बनाऊगी। आखिर मैं भी गृहस्थ हूँ मेरे भी बाल-बच्चे है।'

उसने हँसकर कहा—'भाग्यवान ! तुमसे यह किसने कहा कि मिठाई मत बनाना। मैं तो काफी दिन पहले ही मिठाई बनाने के लिए आवश्यक सामग्री खरीद कर ला चुका हूँ।'

'मुझे एक नयी साड़ी भी तो चाहिए, भला साधारण-सी सूती साड़ी त्यौहार पर अच्छी लगेगी ?'

'भई, हम स्वयं सामान्य हैं, हमको सामान्य वस्तु ही शोभा देनी चाहिए। सामान्य मिठाइयाँ और सामान्य ही वस्त्र।' मुस्कराकर उसने उत्तर दिया।

'ना, इस बार मैं आपकी बातों में नहीं आऊँगी। आप रिश्वत नहीं लेना चाहते, तो न लीजिए, मगर दो महीने का वेतन एडवांस तो अपने विभाग से ही माँग सकते हो।'

'हाँ, माँग तो सकता हूँ, किन्तु यह तो कर्ज होगा, चुकेगा कैसे ?'

'धीरे-धीरे चार-छः महीने में सब उतर जायेगा। पत्नी ने मुस्कान बिखेरते हुए कहा।

'हुँ........तरकीब तो सही है, परन्तु एक कठिनाई है इसमें।' पति बोला।

'क्या ?' पत्नी ने उत्सुक होकर पूछा।

'जीवन का क्या भरोसा कि चार-छः महीने चलेगा या नहीं ! तुम्हें पहले परमात्मा से छः महीने के जीवन की गारण्टी लिखवाकर मुझे देनी होगी।'

★

सच्चाई

चौथी कक्षा की मासिक परीक्षा में गणित का प्रश्न-पत्र हल कर रहे थे सभी छात्र। गोपाल कृष्ण गोखले ने अन्य प्रश्न तो हल कर लिए किन्तु एक प्रश्न पर गाड़ी अटक गई।

गोपाल के साथ वाला छात्र उसकी कठिनाई समझ गया और उसने संकेत से प्रश्न हल करवा दिया।

जब अध्यापक जी ने कापियों की जाँच की तो केवल गोपाल के ही सभी उत्तर सही थे, अन्य सभी छात्रों के नहीं।

अध्यापक ने गोपाल की पीठ थपथपाई, फिर बड़े स्नेह-पूर्वक उसे एक पुस्तक देते हुए बोले—'बेटे गोपाल ! यह पुस्तक तुझे पुरस्कार में दी जाती है। तुम इसी प्रकार मन लगाकर पढ़ा करो, ताकि सदैव ही प्रथम-श्रेणी में उत्तीर्ण हो सको।'

यह सुनते ही प्रसन्न होने की बजाय गोपाल रोने लगा।

'गुरुजी, मुझे पुरस्कार नहीं दण्ड दीजिये।' गोपाल ने सिसकते हुए कहा।

'किन्तु क्यों ?' गुरुजी ने पूछा।

'गुरुजी, मैंने एक प्रश्न के हल करने में अपने पड़ोसी छात्र की सहायता ली थी। गोपाल ने कहा।

यह सुनते ही गुरुजी ने गोपाल को पुचकारते हुए अपने सीने से लगाकर कहा—'अब तक तो तुम्हारी योग्यता के लिए

तुम्हें पुरस्कृत किया जा रहा था, किन्तु अब स्पष्ट-भाषण के लिए। तुम सदैव सत्य बोलो और महान बनो, यह मेरा आशीर्वाद हैं।'

सचमुच गुरुजी का आशीर्वाद फलीभूत हुआ और एक दिन श्री गोपाल कृष्ण गोखले हमारे महान नेता बने।

★

सच्चा नेतृत्व

जब लाल बहादुर शास्त्री भारत के प्रधान मन्त्री थे तो एक दिन उनके एक मित्र ने एकान्त में उनसे कहा—'शास्त्रीजी, आप कभी-कभी पुरानी लकीर से कुछ अलग हटकर नीति-निर्धारित करते हैं, क्या यह सही है ?

'बिल्कुल सही है। शास्त्री जी ने तपाक से उत्तर दिया। सच्चा नेता पुरानी लीक में अपनी गाड़ी चला ही नहीं सकता। क्योंकि राजनैतिक परिस्थितियाँ बदल जाती हैं, मनुष्य बदल जाते है तथा वातावरण भी बदल जाता है, और बदली हुई परिस्थितियों से तालमेल बिठाकर देश की गाड़ी को आगे बढ़ाना नेतृत्व का परम कर्तव्य है।

☆

मूल्य

एक राज्य में एक साधु रहता था। साधु बहुत अच्छा संगीतज्ञ भी था। जब राजा को साधु की उस विशेषता का पता चला तो उसकी इच्छा भी साधु का संगीत सुनने की हुई।

राजा ने अपने दो-तीन अनुचरों को साधु को बुलाने भेजा। साधु के पास पहुँचकर उन लोगों ने राजा का सन्देश उसे सुनाया और फिर कहा—'आपका सौभाग्य है महात्माजी, जो आपका संगीत सुनने की राजा ने इच्छा प्रकट की है। यदि आपका संगीत राजा को पसन्द आ गया तो वह आपको मुँह-माँगी रकम दे देगा।'

उन लोगों की बातें सुनकर साधु मुस्कराया। फिर बोला—'राजा ने मेरा संगीत सुनने की इच्छा प्रकट की, इसके लिए धन्यवाद! आप मुझे बुलाने पधारे, आपका भी धन्यवाद! किन्तु, जिस संगीत को राजा सुनना चाहता है, वह संगीत तो कभी-कभी संयोग से बन पड़ता है। प्रयत्न से पैदा किया हुआ संगीत राजा को प्रसन्न न कर सकेगा। मैं राजा को संगीत सुनाने नहीं जा सकता, आप लोग लौट जायें।'

राजा के अनुचर लौट गये, किन्तु उनकी नजरों में वह साधु मूर्ख था। 'इतने अच्छे अवसर को हाथ से गँवा दिया मूर्ख ने।' वे सभी बार-बार इसी बात को दुहरा रहे थे।

जब उन्होंने साधु का निर्णय राजा को बताया तो राजा क्रोध से बिफर उठा—'दो कौड़ी के भिखमंगे की यह मजाल ! मैं कल ही दो सैनिक भेजूँगा, जो उस गधे की मुश्कें बाँधकर यहाँ ले आयेंगे।'

मन्त्री विद्वान था। उसने राजा को शान्त करते हुए कहा—'महाराज ! आप क्रोधित न हों। अपराध क्षमा हो, वह साधु अवश्य है, किन्तु आप उसे भिखमंगा कदापि नहीं कह सकते। यदि उसे भीख की चाह होती तो वह आपके दरबार में भागा हुआ न चला आता ? सत्य बात तो यह है''''खैर'''' रहने दो।'

राजा का क्रोध शान्त हो चुका था, अतः उसने नम्र वाणी में मन्त्री ने कहा—'नहीं-नहीं मन्त्री जी, रहने क्यों दो, आप पूरी बात कहिये।'

'तो सुनिये महाराज ! सत्य बात तो यह है कि इस समय वह साधु आपकी सम्पत्ति का भिखारी नहीं, बल्कि आप उसके संगीत के भिखारी हैं। याचक आप हैं और दाता वह साधु। आपको यदि संगीत सुनना ही है तो आपको साधु के पास ही पहुँचना होगा। वैसे फिलहाल मैं आपके मनोरंजन के लिए अपने दरबार के प्रसिद्ध गायक व सितार-वादक को बुलवा चुका हूँ। वह थोड़ी बहुत देर में आता ही होगा।'

मन्त्री ने ज्यों ही अपना कथन समाप्त किया, त्योंही दरबार का संगीतज्ञ आ पहुँचा। राजा ने संगीतज्ञ को भी साधु वाली बात बताई।

उस संगीतज्ञ ने कहा—'महाराज ! वह साधु तो सचमुच स्वर्ग का गन्धर्व है, शायद किसी देव-श्राप से इस पृथ्वी पर आ पहुँचा है। आह''''हा ! क्या जादू है उसकी अंगुलियों में !

ज्योंही वीणा के तारों पर अँगुलियाँ फिरती है कि वीणा अमृत बरसाने लगती है। उसने सत्य ही कहा है महाराज, कि सच्चा संगीत पैदा किया नहीं जाता, संयोग से स्वयं जीवन्त हो उठता है। वह हम जैसा भाड़े का टट्टू नहीं है महाराज ! जो राज्य की आज्ञा पाते ही दुम हिलाता हुआ आपके दरबार में आ पहुँचे।'

'कलाकार ! यदि आप भी उसकी कला के प्रशंसक हो, तब तो वह वास्तव में बहुत ही विद्वान होगा। यह बात सुनकर तो आपने हमें विवश कर दिया है कि उसके संगीत का आनन्द लिया जाय।

कुछ क्षण रुकने के बाद राजा ने मन्त्री को आज्ञा दी— 'मन्त्रीजी, मैं अपने संगीतज्ञ के साथ उस साधु का संगीत सुनने जाना चाहता हूँ। हमारे लिये दो घोड़े मँगवाओ।'

मन्त्री कुछ उत्तर देता इसके पूर्व ही वह संगीतकार बोल उठा—'ऐसा गजब मत करना महाराज ! यदि आपको सच्चा संगीत सुनना है तो आपको यह भुला देना होगा कि आप राजा हैं। आपको विनम्र श्रोता बनकर ही संगीतज्ञ के पास चलना होगा।'

'तो क्या पैदल ही ?' राजा ने प्रश्न किया।

'न केवल पैदल ही, बल्कि इन राजसी वस्त्रों को उतार कर भी। यदि आपने राजा बनकर संगीत सुना तो वह संगीत विशिष्ट संगीत न बन पायेगा। वह संगीत तो फिर वही संगीत रह जायगा, जो हम नित्य आपको सुनाते हैं।'

कलाकार की शर्त बड़ी अजीब थी। किन्तु राजा तो संगीत सुनने के लिए बेचैन था। उसने तुरन्त अपनी राजसी पोशाक उतारकर मामूली कपड़े पहन लिए और नंगे पैर उस संगीतज्ञ के साथ चल पड़ा।

साधु की झोंपड़ी पर पहुँचते-पहुँचते उन्हें रात हो गई। पूर्णमासी की रात थी और कार्तिक का महीना, शीतल चन्द्रमा ने अपनी ज्योत्सना से उनके दिनभर की थकान हर ली।

राजा अपने साथ आये संगीतकार से बोला—'कलाकार ! यदि इतने परिश्रम के बाद भी हम साधु का सच्चा संगीत न सुन पाये तो दुःख होगा। कोई ऐसी युक्ति सोचिये, जिससे हम साधु का संगीत सुन सकें।

'महाराज ! मैंने युक्ति सोचली है, उसके सफल होने की पूरी-पूरी आशा है, आप निराश न हों।' यों कहकर उस संगीतज्ञ ने राजा को झोंपड़ी के बाहर बने चबूतरे पर बिठा दिया और स्वयं भी उसके समीप ही बैठकर अपनी वीणा के तार मिलाने लगा और जानकर ही उसने गलत ढंग से राग अलापना शुरू कर दिया।

वीणा की झंकार और राग का गलत अलाप सुना तो साधु झोंपड़ी से बाहर निकल आया। उसने बीणा को अपने हाथ में ले लिया और संगीतकार को राग निकालने की सही तरकीब बताने लगा।

'महाराज, इस राग को आप ही गा दें तो आपकी बड़ी कृपा हो।' संगीतज्ञ ने साधु से निवेदन किया।

साधु ने सहर्ष गाना शुरू कर दिया। गायक और श्रोता, सब आनन्द में डूबकर आत्म-विभोर हो गये। उन्हें यह भी पया न चला कि चन्द्रमा सूरज के रूप में बदल चुका है।

जब वे आनन्द के संसार से निकलकर वास्तविक दुनियां में लौटे तो पता चला कि रात जा चुकी है। साधु को भी अपने दैनिक कृत्य करने थे, उसने वीणा संगीतकार को लौटाते हुए कहा— 'सचमुच आनन्द आ गया, आज तो।'

'हाँ महाराज, सचमुच आनन्द आ गया। मैं आठ वर्ष से राजा हूँ, किन्तु आठ वर्ष की अवधि में कभी एक घण्टे को भी मुझे ऐसा आनन्द नहीं मिला जो आज लगातार आठ घण्टे तक मिला है। राजा ने कहा।

राजा को आपने सामने देखा तो साधु कुछ सकपकाया। तभी राजा के संगीतज्ञ ने सारी कहानी साधु को सुना दी।

साधु ने हँसकर राजा से कहा—'आपके सेवक यों कह रहे थे कि हमारे राजा को आपका संगीत पसन्द आ गया तो वह आपको धन से लाद देगा। आपको मेरा संगीत पसन्द आ ही गया है, अब आप मुझे क्या दे रहे हो ?

'महाराज! आपके पास बिताये इन आनन्द-क्षणों की तुलना में मेरा सारा राज्य भी तुच्छ है। मेरा अहंकार गल गया है।' यों कहते ही राजा की आँखें भर आयीं और उनसे लुढ़क कर दो मोती साधु के पैरों पर लुढ़क पड़े।

★

हृदय-परिवर्तन

अंगुलिमाल प्रसिद्ध लुटेरा था। क्रूर और अत्याचारी! जो भी सामने आ जाता, उसे ही लूट लेता। यदि सामने वाला कुछ ना-नुच करता तो उसकी तलवार उसका गला नापने को सदैव तैयार रहती थी।

एक दिन महात्मा गौतम बुद्ध घनघोर जंगल में होकर कहीं जा रहे थे। दूर से अंगुलिमाल ने उन्हें देख लिया।

बस, फिर क्या था ! वह आनन-फानन में उनके पास जा पहुँचा और बोला—'साधुजी, जा कुछ भी तुम्हारे पास हो, सीधी तरह निकाल कर मुझे दे दो, अन्यथा तुम्हारी जान की खैर नहीं।'

अंगुलिमाल की बात सुनकर गौतमबुद्ध मुस्कुराये और उसकी आँखों में गहराई से झाँककर बोले—वत्स, मेरे पास दया और क्षमा जैसे रत्नों का भारी भण्डार है, वह तुम्हें सौंपता हूँ। झगड़े की क्या जरूरत है ?'

बुद्ध का इतना कहना ही मानो जादू हो गया ! अंगुलिमाल की दुर्भावना न जाने कहाँ चली गई। अपनी तलवार को दूर फेंक कर वह बुद्ध के चरणों में झुक गया और बोला—'धन्य हो महात्मन् ! आज मैं मालामाल हो गया।'

कर्तव्य-पालन

बात पुरानी है। समुद्र-मार्ग से नौका द्वारा विदेश-व्यापार करने वाला एक व्यापारी था। संयोग से उसे व्यापार में भारी लाभ हुआ। घाटा क्या होता है, यह उसने कभी जाना ही नहीं।

अपने व्यापार से जब उसने विपुल सम्पदा इकट्ठी कर ली तो एक दिन उसके अभिन्न मित्र ने बातों-ही-बातों उससे कहा—'बलभद्र ! तुम दिन-रात समुद्र की गोद में खेलते हो, तुम्हें तो तैरने की कला में अवश्य प्रवीण होना चाहिए, जबकि तुम बिल्कुल ही तैरना नहीं जानते हो।'

'बात आपकी सही है मित्र ! किन्तु तैरना सीखने के लिए मेरे पास समय कहाँ ? जितने दिन में तैरना सीखूँगा, उतने दिनों में तो मैं लाखों के बारे-न्यारे कर दूँगा।'

'हुँ, यदि ऐसा है तो चमड़े के खाली घड़ों की एक हल्की नौका ही तैयार कराकर अपने जलयान में रखलो। भगवान न करे, कभी यात्रा के दौरान बुरा समय आ जाय तो वह नौका तुम्हारी मदद कर सकेगी।'

मित्र का यह सुझाव बलभद्र को पसन्द आया। अगली यात्रा पर जाते समय वह ऐसी नौका तैयार कराकर अपने साथ ले भी गया। उस खेप (यात्रा) में उसने पहले की सब खेपों से अधिक धन कमाया। प्रसन्नता में सराबोर होकर वह लौट रहा था।

अभी वह आधा सफर ही तय कर पाया था कि अचानक समुद्र में तूफान आ गया। नाविकों ने अपनी यान का सन्तुलन बनाये रखने का बहुतेरा प्रयास किया किन्तु वे सफल न हो सके। अन्ततः वे पानी में छलांग लगा गये। तब बलरभद्र को अपनी घड़ों की नौका याद आयी।

हल्की नौका को समुद्र में छोड़ने के पूर्व वह सोचने लगा-'इस खेप में मूल्यवान रत्न कमाये हैं। अपने साथ कुछ रत्न अवश्य ले चलने चाहिए।'

बस, तुरन्त उसने कुछ वजनदार थैलियों को उठाकर छोटी नौका में भर लिया और उसके बाद स्वयं भी उसमें चढ़ गया। पर भला उस हल्की-सी नौका की इतनी सामार्थ्य कहाँ थी, जो इतना भार सम्भालती। जैसे ही सेठ बलभद्र उसमें बैठा, तैसे ही वह लुढ़क-पुढ़क हो गई।

सारे रत्नों को रत्नाकर के गर्भ में उतारने के बाद नौका फिर पानी के ऊपर उभर आई, किन्तु तब अपना कर्तव्य निभाने के कारण वह प्रसन्न-चित्त और प्रफुल्लित थी—बिल्कुल हल्की-फुलकी !

मनुष्य भले ही अपना कर्तव्य न निभाये, किन्तु प्रकृति भला अपना कर्तव्य-पालन भूल सकती है ?

★

अन्त भला, सो भला

अमेरिकन राष्ट्रपति लिंकन के विरोधी, अखबारों में जी-ओलकर उनकी बुराई करते, किन्तु लिंकन अविचलित भाव से अपने काम में जुटे रहते। एक दिन उनके एक मित्र ने उनसे कहा—विरोधी लोग आपके खिलाफ चाहे जैसी अनेकों ऊल-जलूल बातें अखबारों में प्रकाशित कराते रहते हैं, उनकी बातों का प्रत्युत्तर आपको भी तो देना चाहिए।'

मित्र की बात सुनकर लिंकन मुस्कराते हुए बोले—'मित्र ! यदि मैं अपनी आलोचनाओं का उत्तर ही देने लगूँ तो मैं दिन भर में केवल इसी काम को कर पाऊँगा। मेरे कार्यालय में फिर कोई अन्य कार्य हो ही न सकेगा। मेरा तो एक ही उद्देश्य है—अपनी सारी योग्यता और शक्ति का उपयोग करते हुए ईमानदारी पूर्वक अपना काम करना। वह मैं करता हूँ और इस पद पर रहने को अन्तिम घड़ियों तक करता रहूँगा।

यदि मैं अन्त में बुरा सिद्ध होता हूँ, तो भले ही लाख सफाई देता रहूँ कि मैं सही था, मेरा रास्ता सही था–कोई इस बात को न सुनेगा और यदि मैं अन्त में भला सिद्ध होता हूँ तो मेरे विषय में जो प्रलाप किया जा रहा है, वह निश्चित रूप से अनर्गल सिद्ध होगा। मुझे न तो चिन्ता है और न भय, आप भी चिन्तित न हों।'

मैं क्या वृक्ष से भी गया-बीता हूँ !

महाराज रणजीतसिह कहीं जा रहे थे। साथ में बहुत से अमीर-उमराव व अङ्ग-रक्षक थे। इस सब काफिले के होते हुए भी अचानक एक मिट्टी का ढेला महाराज की कनपटी पर आकर लगा। सभी चौंके, अङ्ग रक्षक स्तब्ध ! तुरन्त ढेले मारने वाले की खोज शुरू हो गई।

थोड़ी देर में दो सिपाही एक मरियल-सी बुढ़िया को पकड़कर महाराज के समाने लाये। बुढ़िया भय से थरथर काँप रही थी। बड़ी कठिनाई से वह कह पायी —'मैं बे-कसूर हूँ महाराज ! मैं तो अपने बच्चे की भूख मिटाने के लिए कुछ फल तोड़ना चाहती थी।'

महाराज ने बुढ़िया को सान्त्वना दी—'घबड़ाओ मत माई ! अपनी बात आराम से कहो।'

'महाराज, यही ढेला यदि अमरूद वाली डाली को लग जाता तो मैं अमरूद पा जाती, पर ढेला अमरूद की डाली को न लगकर आपको लग गया, मैं अपने किये की क्षमा चाहती हूँ।'

'माँ, यदि तुम्हारा ढेला अमरूद को लगता तो तुम्हें अमरूद खाने को मिल जाता न ?'

'हाँ-महाराज !' बुढ़िया ने कहा।

'अब तो तुम्हारा ढेला रणजीत को लगा है, वह वृक्ष से गया-बीता नहीं है तुम्हें और तुम्हारे बेटे को स्वादिष्ट सामग्री खाने की मिलेगी।'

बुढ़िया भौंचक्क ! अमीर-उमराव सन्न !! अङ्ग-रक्षक हैरान !!!

तभी महाराज ने आज्ञा दी—'इस बुढ़िया को सालभर खाने-पीने योग्य अन्न दिया जाय और एक हजार रुपया नकद !'

यह दूसरा आश्चर्य था। एक सेवक ने पूछ ही तो लिया—'यह आप क्या कर रहे हैं, महाराज ! अपराधी को सजा की बजाय पुरस्कार दे रहे हैं ?'

'अरे भाई, जब निर्जीव पेड़ ही ढेला लगने पर मीठा फल देता है तो 'पंजाब-केशरी' को भी तो कुछ देना चाहिए !' यों कह कर महाराज मुस्कुराये !

*

सागर-बिन्दु

श्री थियोडोर रूजवेल्ट का अमेरिका के राष्ट्रपति पद पर चुना जाना लगभग निश्चित हो गया तो उनके प्रिय मित्र बीब उनके घर पहुँचे और रूजवेल्ट से बोले—'यार, अब तो तुम दुनिया के बहुत बड़े आदमी हो जाओगे। मेरी अग्रिम बधाई स्वीकार करो।'

रूजवेल्ट बोले—'यार बीब ! मैं कितना बड़ा आदमी हो जाऊँगा, इसका उत्तर तो रात की चाँदनी में ही अच्छे ढंग से दिया जा सकेगा, आज की रात तुम मेरे पास ही रुको।'

विलियम बीब और रूजवेल्ट की दाँत-काटी रोटी थी, वे प्रायः रूजवेल्ट के घर रुक जाते थे। उस दिन भी रुक गये।

साथ-साथ भोजन करने के बाद दोनों मित्र लॉन में घूमने लगे तो आकाश की ओर मुँह करके रूजवेल्ट बोले, 'बीब, यह जो आकाश-गङ्गा दिखाई दे रही है—इसमें छोटे-छोटे दिखने वाले तारों में से कुछ तारों का आकार हमें दिखाई पड़ने वाले सूर्य से भी हजारों गुना बड़ा होता है न ?'

'हाँ भाई रूजवेल्ट ! यह बात तो सही है।

'और, सूर्य हमारी पृथ्वी से अनेकों गुना बड़ा है—न ?'

हाँ, यह बात भी सही है।'

'और अमेरिका इस पृथ्वी का एक टुकड़ा है, इस बात को मानोगे न ?'

'मान गया भई, मान गया। अपनी महानता या तुच्छता को मैं अच्छी तरह समझ गया। चलो अब सोया जाय।' मुस्कराकर बीब ने कहा।

★

अपराध-स्वीकृति

एक मन्त्री महोदय किसी जेल का निरीक्षण करने गये। जेल में सजा भुगत रहे प्रत्येक कैदी से अत्यन्त आत्मीयता पूर्वक मन्त्री महोदय ने यह पूछा कि उसे किस अपराध के कारण वहाँ आना पड़ा ?

किसी कैदी ने कहा—'मैं निरपराध हूँ, किन्तु आपसी रंजिश के कारण यहाँ आना पड़ा है।' किसी ने कहा—'पुलिस का दरोगा मुझसे जलता था, उसने झूठा केस बनाकर मुझे

फँसा दिया।' किसी ने कहा—'झूठे गवाहों के बयानों के कारण मैं सजा भोज रहा हूँ। मैं बिल्कुल निर्दोष हूँ।' हाँ, एक कैदी ने अवश्य यह कहा 'मान्यवर! मेरी सजा उचित ही हुई है, इसके लिए मैं स्वयं ही दोषी हूँ, कोई अन्य नहीं।'

'ऐसा क्या काम किया था तुमने ?'

'भूख बर्दाश्त न कर पाने के कारण मैंने एक धनी आदमी के यहाँ चोरी की थी। पकड़ा गया और एक चोर को जहाँ आना चाहिये था, वहाँ आ पहुँचा। काश, चोरी के स्थान पर मैंने परिश्रम करके रोटी दो रोटी पैदा की होती! मैं बहुत बुरा आदमी हूँ सरकार, सचमुच बहुत बुरा।'

'मन्त्रीजी ने जेलर से कहा—'जेलर महोदय! आपने इतने निर्दोष, निरपराध और भले लोगों के बीच इस बुरे आदमी को क्यों रखा हुआ है ? इसे तुरन्त जेल से बाहर करो।'

मन्त्री के व्यंग्य-कथन का आशय समझकर जेलर ने उस कैदी को रिहा कर दिया।

★

सुख-दुःख

किसी देश की सीमा पर शत्रु-सेना ने आक्रमण किया तो उस देश को भी अपनी सीमा की रक्षा के लिए अपनी सेना को शत्रु-सेना से लोहा लेने भेजना पड़ा। सीमा पर पहाड़ी मार्ग था। रात का अँधेरा घिरा तो दस सैनिकों की एक टुकड़ी मार्ग भटक गई।

रात में अपने साथियों को खोज पाने का कोई उपाय न था। उन सिपाहियों ने रात-बसेरे के लिए एक पहाड़ी नदी के किनारे अपना पड़ाव डाल दिया। वे पत्थर की चट्टान पर लेट गये तो उनमें से एक सैनिक बोला—'हम लोगों का जीवन भी कैसा अजीब है! भूख से आँतें निकली पड़ रही हैं और इस पथरीली भूमि में पड़े हुए हैं। न सोने का ठिकाना और न भोजन का।'

उसकी निराशा भरी बातों को सुनकर उसका दूसरा साथी बोला—'प्यारे दोस्त! छावनी में पड़े हुए सुख-सुविधा से परिपूर्ण जीवन भी तो हम-ही बिताते हैं। संसार के हर क्षेत्र में सुख और दुःख साथ-साथ चलते हैं। जिसने दुःख का दर्द न सहा हो, वह बेचारा सुख का सच्चा आनन्द भी नहीं ले सकता।'

उसकी बात का समर्थन करता हुआ तीसरा सैनिक बोल उठा—'सही कह रहे हो भाई! शत्रु-सेना पर विजय पाकर जब हम लौटेंगे तो क्या राजा और क्या सेनापति, सभी हमारी प्रशंसा करते नहीं अघायेंगे।'

निराश सैनिक ने उपेक्षा से कहा—'हुँ''''ही मन के लड्डू मुख मीठा नहीं किया करते जनाब! हम साथियों से भटक चुके हैं, अभी तो हम निश्चयपूर्वक यह भी नहीं कह सकते कि हम अपने साथियों को भी खोज पायेंगे। शत्रु की सेना को जीतना तो दूर की बात है।'

वे इस प्रकार बातें कर ही रहे थे, तभी वहाँ एक बौने कद का साधु आया और उनसे बोला—'प्यारे भाइयो! तुम लोग सवेरे उठकर जब चलने लगो तो एक-एक मुट्ठी इस नदी की बालू अपनी-अपनी जेबों में भर लेना। उस बालू को दोपहरी में सूरज की रोशनी में देखना, तुम्हें दुःख और सुख के दर्शन

हो जायेंगे।' यों कह कर वह साधु तेज कदमों से चला गया और उन लोगों की आँखों से ओझल हो गया। फिर तो अपनी स्थिति पर विचार करना छोड़कर सभी सैनिक उस विचित्र साधु की चर्चा ही करने लगे।

सुबह मुँह-अँधेरे वे उठे और साधु के निर्देश के अनुसार सबने एक-एक मुट्ठी नदी की बालू अपनी-अपनी जेब में डाल ली और चल पड़े।

दोपहर को जब उन्होंने रेत को देखा तो आश्चर्य से मारे उनकी आँखें चौड़ी हो गईं। जिसे वे रेत समझ रहे थे, वे निरे रत्न थे—मूंगा और मोती।

जो सन्तोषी प्रकृति के सिपाही थे, वे तो प्रसन्नता से चहकते हुए बोले—हम मालामाल हो गये दोस्तो।' किन्तु जो निराश मनोवृत्ति के सिपाही थे, वे बोले—'अरे कम्बख्तो! तुम हँस रहे हो, तुम्हें तो रोना चाहिए।' यों कहकर वे अपना सिर थामते हुए मुँह लटकाकर बैठ गये।

'क्यों, क्या हुआ भाई!' साथियों ने उनसे पूछा।

'अबे उल्लू की दुमो! यह बताओ कि क्या नहीं हुआ? हमारा सर्वनाश हो गया! हम लुट गये!!'

आखिर कैसे? कुछ पता तो चले कि तुम्हारे ऊपर कौन-सा पहाड़ फट पड़ा है।' मुस्कराकर साथी बोले।

'अरे-तुम तो निरे घामड़ हो। कम्बख्तो! यह तो सोचो कि हम एक मुट्ठी रेत के स्थान पर अपने थैले भर रेत भी तो ला सकते थे? मालामाल तो हम तब होते!'

अपने निराश साथियों की यह बात सुनी तो शेष सभी ठहाका मारकर हँसते हुए बोले—उस बेचारे साधु को अपना जीवन भी प्यारा था। यदि वह तुम्हें थैला भरकर रेत ले जाने

की सलाह देता तो तुम उसकी बात पर विश्वास कर लेते क्या ?'

तभी उन्हें साधु द्वारा कही गई बात स्मरण हो आई कि सुख और दुःख वास्तव में अपने मनो-विचारों पर निर्भर करता है। कोई भी मनुष्य किसी भी परिस्थति में स्वयं को सुखी या दुःखी अनुभव कर सकता है।

आवेश के क्षण

एक प्रसिद्ध व्यापारी के विषय में किसी समाचार-पत्र में कटु आलोचना और निन्दाजनक बातें प्रकाशित हो गईं। उस व्यापारी ने जब उन बातों को पढ़ा तो क्रोध से तमतमा कर, हाथ में समाचार-पत्र की प्रति लिए, अपने एक मित्र (मन्त्री) के बंगले पर जा धमका। उससे बोला, 'यार, लानत है तुम पर ! तुम्हारा जैसा मित्र होते हुए भी अखबार वाले मेरे विषय में क्या अण्ट-सण्ट लिख रहे हैं, लो स्वयं पढ़ लो और अभी तुरन्त मेरे साथ न्यायालय चलो।'

'न्यायालय चलकर क्या करोगे ?' मन्त्री जी ने मुस्करा कर पूछा।

'इस अखबार के मूर्ख सम्पादक को मजा चखाने के लिए उसके विरुद्ध मानहानि का दावा करना पड़ेगा।'

अखबार में छपा समाचार पढ़ने के बाद उस व्यापारी के मन्त्री मित्र ने पूर्ववत मुस्कुराते हुए कहा—यों तुम्हारे लिए

अदालत तो क्या मैं नर्क में भी चलने को तैयार हूँ। मगर शान्तिचित्त होकर मेरे एक प्रश्न का उत्तर दे दो।'

'बोलो क्या पूछना चाहते हो ?'

'इस समाचार पर तुम्हारी स्वयं की नजर गई थी या या किसी अन्य सज्जन ने इसकी सूचना तुम्हें दी थी।'

'मेरे पास भला अखबार को आद्योपान्त पढ़ने का फालतू समय कहाँ है, मुझे तो किसी दूसरे आदमी ने ही इस समाचार को दिखाया था।'

'हुँ....विश्वास करो मित्र ! सुबह यह अखबार मैंने भी पढ़ा था, पर मेरी नजर भी इस समाचार पर नहीं गयी थी। इसलिए हमें सम्पादक के खिलाफ मानहानि का दावा तो क्या, इस की चर्चा भी किसी से नहीं करनी है। क्योंकि हमारी-तुम्हारी तरह ही इस अखबार के आधे से अधिक पाठकों ने तो यह समाचार देखा ही न होगा। जिन्होंने देखा भी होगा उनमें से आधे लोगों ने पढ़ा न होगा। जिन्होंने पढ़ा भी होगा, उनमें से बहुतेरों ने इसे समझा न होगा और जिन्होंने समझ भी लिया होगा उन्होंने इस समाचार को सत्य नहीं माना होगा।'

व्यापारी ने भी लड़ने की कसम नहीं खा रखी थी, अपने मित्र की बात उसकी समझ में आ गई और उसकी बदले की भावना तिरोहित हो गई।

❀

मन का चोर

इंग्लैण्ड के विख्यात कवि बायरन अपने स्वास्थ्य-सुधार के लिए जेनेवा (स्विट्जरलैण्ड) में निवास कर रहे थे। एक दिन उनका बचपन का दोस्त उनसे मिलने पहुँचा। वे बहुत प्रसन्न हुए। मित्र का जी-खोलकर आतिथ्य किया। शाम को अपने मित्र को वहाँ का प्रमुख पार्क दिखाने भी ले गये।

जब मित्र का ध्यान पार्क की कोमल घास पर गया तो बायरन यकायक ठिठककर रुक गये और बोले—'यार! तुम बचपन में भी मेरी लँगड़ी टाँग के लिए चिढ़ाया करते थे और अब भी टाँग की तरफ ही देख रहे हो।'

मित्र ठहाका लगाकर हँसते हुए बोला–'मेरे प्यारे मित्र! तब की बात छोड़िये, तब तो तुम्हारा आकर्षण केवल तुम्हारी लँगड़ी टाँग ही थी किन्तु अब तो तुम जवर्दस्त प्रतिभा के धनी हो। अब भला ऐसा कौन उल्लू होगा, जो तुम्हारे विशाल मस्तिष्क को छोड़कर टाँगें देखने की जेहमत उठायेगा? यह तुम्हारे मन का चोर है।'

अपनी डगर बुहार

यूनान के महान दार्शनिक सन्त डायोजिनस एक सड़क के किनारे बैठे हुए विश्राम कर रहे थे। सड़क के बीचोंबीच

एक बड़ा-सा पत्थर रखा था। कुछ राहगीर पत्थर से ठोकर खाकर गिर पड़ते और अपनी चोटों को सहलाते हुए आगे बढ़ जाते और कुछ राहगीर उस पत्थर से बचकर निकल जाते। तभी एक युवक आया और पत्थर से ठोकर खाकर गिर पड़ा। वह उठा, सड़क के बीच में पत्थर रखने वाले को गन्दी-गन्दी गालियाँ सुनाकर कासने लगा।

यह देखकर डायोजिनस जोर से हँस पड़े तो वह युवक उन पर भी बरस पड़ा—'आप तो समझदार आदमी दिखाई देते हो, फिर भी मेरी चोट को देखकर हँस रहे हो ?

डायोजिनस बोले—प्रियवर ! तुम्हारी चोट के लिए तो हृदय से दुःखी हूँ। हँसी मुझे तुम्हारी चोट पर नहीं, बल्कि तुम्हारी बुद्धि के खोट पर आ रही है।'

'वह कैसे ?' युवक ने पूछा।

'मैं जब से यहाँ बैठा हूँ, कम से कम दस युवक ठोकर खाकर गिर चुके हैं, किन्तु किसी ने भी पत्थर को सड़क से हटाकर दूर नहीं फेंका। तुम तो उनसे भी दो कदम आगे निकल गये। चोट भी खाई और गन्दी-गन्दी गालियाँ भी बक रहे हो।'

क्रोधाग्नि की दमकल

सेना के एक प्रमुख अधिकारी ने अमेरिका के तत्कालीन रक्षा-मन्त्री के आडर को ठीक से न समझ पाने के कारण कोई भूल कर डाली। जब रक्षामन्त्री को यह बात ज्ञात हुई तो

वह तत्कालीन राष्ट्रपति लिंकन के पास पहुँचा और क्रोध से बिफरता हुआ बोला—'श्रीमानजी, सब गुड़-गोबर हो गया।'

लिंकन के पूछने पर रक्षामन्त्री ने उन्हें विस्तार से सारी कहानी सुनाई, फिर बोला—'अब आप देखिये कि मैं उस जनरल के बच्चे की कैसी खिंचाई करता हूँ। अभी उसे पत्र लिखता हूँ।'

'ठीक है अवश्य पत्र लिखिये और उसमें जितने कठोर से कठोर शब्दों का प्रयोग कर सकते हो, करिये।' राष्ट्रपति ने सुझाव दिया।

अपने नेता की स्वीकृति मिली तो रक्षामन्त्री ने अपने मन की भड़ाँस निकालते हुए खूब गाली-गलौज भरा पत्र लिखा। पत्र पूरा हो जाने पर वह राष्ट्रपति की मेज पर पुनः पहुँचा और विनम्रता के साथ बोला—'श्रीमान, कृपया आप भी पत्र का अवलोकन करलें। इसमें मैंने सेनाधिकारी को खूब आड़े हाथों लिया है।'

बिना रक्षामन्त्री की ओर देखे ही राष्ट्रपति ने कहा, 'ठीक है, इस पत्र को फाड़कर फेंक दीजिये। ऐसे पत्र भेजने के लिए नहीं, मन की भड़ास निकालने के लिए ही लिखे जाते हैं। मैं भी सदैव यही करता हूँ। मैं समझता हूँ—ऐसा करके आपने अपने क्रोध पर काबू पा लिया होगा।'

❀

सिर काटे सिर होत है....

विश्व के जाने-माने धनकुबेर अमेरिका के हेनरी फोर्ड जब अपनी कीर्त्ति और कमाई की चोटी पहुँच गये तो एक

पत्रकार ने उनसे पूछा—'महोदय, आपने अपने जीवन में प्रचुर मात्रा में धन-सम्पत्ति के साथ-साथ यश और गौरव भी कमाया है। आपके हाथों महान कार्यों का सम्पादन हो चुका है। अब तो आपको अपने जीवन में कोई कमी अनुभव नहीं होती होगी ?'

हेनरी फोर्ड तपाक से बोले—'यह ठीक है कि मैंने पर्याप्त धन और प्रतिष्ठा कमाई है, किन्तु मैं ऐसा महसूस करता हूँ कि मेरा कोई सच्चा मित्र रहीं रहा। यदि मुझे फिर से जीवन शुरू करना पड़े तो मैं मित्रों की तलाश करूंगा। इसके लिए भले ही मुझे अपना सारा धन ही क्यों न ठिकाने लगाना पड़े।

तब तो आपको जीवन में मित्र तो मिल सकते हैं, किन्तु सच्चा मित्र एक भी नहीं मिल सकता।' पत्रकार ने भी दो-टूक जवाब दिया।

'वह क्यों ?'

'क्योंकि आप केवल धन बाँटने को तैयार है, यश बाँटने को नहीं। याद रखिये फोर्ड महोदय ! 'अहंकार' को मिटाये बिना संसार की भले ही सारी नियामतें मिल जायें किन्तु सच्चा मित्र नहीं मिल सकता।'

आप ठीक कह रहे हैं मित्र ! मैंने बचपन में जिन मित्रों से हर तरह की सहायता पाई, धन-सम्पन्न हो जाने पर भी उनकी सहायता न कर सका, उल्टे धन ने तो मेरे और मेरे-मित्रों के बीच दीवार ही खड़ी कर दी। अब बुढ़ापे में कोई ऐसा व्यक्ति नहीं है, जिससे मैं अपने मन के उद्गार, व्यक्तिगत समस्यायें खुलकर कह सकूँ। साहित्य, समाज व राजनीति पर बातें कर सकूँ।'

●

व्यस्त-तम

अमेरिका के महान समाज-सुधारक विलबरफोर्स से उनके एक मित्र ने व्यंग्य किया—'मित्र ! आपको जहानभर की मुक्ति की तो चिन्ता लगी रहती है, किन्तु कभी आपने अपने विषय में भी कुछ सोचा है या नहीं ?'

विलबरफोर्स ने मित्र के नहले पर दहला लगाया—'हाँ यार ! सचमुच मैं अपने जीवन में इतना व्यस्त रहा हूँ कि मुझे मालूम ही न हो सका कि समाज से अलग 'मैं' भी कुछ हूँ ।'

●

दूसरा कनफ्यूशस

सन् 1938 में चीन और जापान के युद्ध के समय चीनी, मोर्चे के अस्पताल में अंग्रेज युवक डॉ० डोनाल्ड की नियुक्ति प्रधान चिकित्सक के रूप में हुई ।

डॉ० अत्यन्त मेधावी, सरल-चित्त, कर्तव्यनिष्ठ और सेवा-परायण था । नित्य सोलह घण्टे तक वह मरीजों की सेवा-सुश्रूषा और ऑपरेशन में व्यस्त रहता । अपने सधे हाथों से मरीजों का ऑपरेशन करता, उन्हें दिलासा देता, धैर्य बँधाता और उनमें आशा का संचार करता । यद्यपि चीनी सैनिक अंग्रेजी भाषा न समझ पाते, किन्तु डॉक्टर की मधुर मुस्कान और संकेत उन्हें उसके हृदय की भाषा समझाने को पर्याप्त थे ।

एक दिन बड़ी भयंकर बम वर्षा हुई। और तो और, अस्पताल की छत पर ही अठारह बम फटे। जब खतरा टलने का साइरन (भोंपू) बजा तो सेना के अधिकारी क्षति का अनुमान लगाने दौड़ पड़े। खाइयों में लोगों को खोजा जाने लगा, किन्तु वहाँ डॉक्टर डोनाल्ड न था। अधिकारी तुरन्त भागे-भागे मरीजों के बार्ड में पहुँचे तो वहाँ डॉक्टर को चुपचाप खड़े हुए पाया। वे बोले—डॉ० खतरे के समय तो आपको खाई में रहना चाहिए था, आप देख नहीं रहे हैं कि अस्पताल का अधिकांश भाग तहस नहस हो चुका है।'

नहीं भाई ! प्राण रहें या जायें, इस बात की मुझे तनिक भी चिन्ता नहीं है। आप लोग यह भी सोचो कि यदि इन नाजुक ऑपरेशन वाले मरीजों के बीच रहकर इन्हें धैर्य न बँधाता तो ये हड़बड़ी में अपने जीवन को दाँव पर लगा सकते थे। मैं डॉक्टर हूँ, मेरा सर्वप्रथम स्थान मरीजों के बीच है।'

उस महान आत्मविश्वासी और सेवा-परायण डॉक्टर को सैनिक मरीज चीन के महान दार्शनिक सन्त कन्फ्यूशस के नाम से पुकारने लगे थे।

नम्रता

सूफी सन्त वायजीद कोई गीत गुनगुनाते हुए कहीं चले जा रहे थे। मार्ग में एक युवक इकतारे पर गजल गाता हुआ मिला। वायजीद के गीत से उसके गायन में बाधा पड़ी तो वह क्रोध में भर उठा। उसने आव देखा न ताव, अपना इकतारा बूढ़े सन्त वायजीद की खोपड़ी में दे मारा। इकतारा टूट गया।

बायजीद ने चोट की परवाह न करके कहा—'बेटे! तेरा नुक-
सान हो गया न ? ले, यह पैसे ले-ले, नया तम्बूरा खरीद लेना।'
यों कहकर अपनी जेब से निकालकर कुछ रुपये उस युवक को
थमा दिये।

सन्त की विनम्रता देखकर युवक की अकड़ उड़न-छू हो
गयी। वह उनके पैरों पर नाक रगड़ता हुआ बोला—'मेरा
अपराध क्षमा हो देव !'

सन्त तो सच्चा सन्त था। अपनी पीड़ा से वह दुःखी भी
न हुआ था और अपनी प्रशंसा सुनकर फूला भी नहीं। वह
अपनी राह चला गया।

❀

युक्ति की शक्ति

एक वृद्ध सज्जन रेल से सफर कर रहे थे। मार्ग में एक
स्टेशन पर कुछ लड़के भी उसी डिब्बे में सवार हुए और उस
वृद्ध की सामने वाली सीट पर बैठ गये। उनमें से एक लड़का
अत्यन्त शरारती था। वह उस बूढ़े को उत्तेजित करके मजा
लेना चाहता था। अतः उसने सीट से नीचे रखे बूढ़े के पैरों
में ठोकर लगादी। ने अपने पैर सिकोड़ लिए। थोड़ी देर
बाद उसने फिर ठोकर मारी तो बढ़ा उसके मनोभाव को
समझ गया, किन्तु उससे कहा कुछ भी नहीं।

तीसरे बार जब उस शैतान लड़के ने पुनः ठोकर मारी
तो बूढ़े ने उसे सबक सिखाना ही अधिक उचित समझा। उसने
उस लड़के की टाँग अपने हाथों में लेकर कहा—'बेटे, शायद तेरी

टाँग में कोई तकलीफ है, तभी तो तू बार-बार मुझे ठोकर मारता है। ला, तेरी टाँगें दबा दूँ, दर्द कम हो जायगा।'

उस वृद्ध का यह कहना था कि लड़के पर घड़ों पानी पड़ गया। वह पूरी यात्रा के दौरान एकदम शान्त बैठा रहा। यहाँ तक कि वृद्ध की ओर आँख उठा कर भी न देख सका।

सिक्के के पहलू

उस अन्धे के स्वर में मानो जादू भरा था। जिसके भी कानों से उसकी मधुर स्वर-लहरी टकराती, वही रास्ता भूल जाता—स्त्री-पुरुष, बच्चे-वृद्ध सब। उस दिन भी जब उसने अपने इकतारे पर राग छोड़ा तो थोड़ी ही देर में उसके आस-पास भीड़ इकट्ठी हो गई। अन्धा भिखारी एक विशाल नीम के पेड़ के नीचे बैठा था और उस पेड़ की एक शाखा पर बन्दर भी बैठा था। अन्धे के गीत से बन्दर भी प्रसन्न हो उठा। उसने मस्ती में झूमते हुए अपने समीप की एक डाली पकड़ ली और उसे जोरों से झकझोर डाला।

दर्शकों में से एक आदमी ने ऊपर बन्दर की ओर देखा तो नीम का एक तिनका उसकी आँख में गिर पड़ा। वह बन्दर को गन्दी-गन्दी गालियाँ बकने लगा तो अन्धे के गीत में कुछ व्यवधान पड़ा। वह बोल पड़ा—'क्या बात है दयालु! शोर-शराबा क्यों करते हो?'

'बन्दर ने आँख में तिनका फेंक दिया था, इसलिए मैं उस बन्दर को कोसने लगा था, आप अपना गीत चालू रखें, भक्त!' उस आदमी ने अपनी आँख पर हथेली रखते हुए कहा।

'हैं''''बन्दर के इस उपकार के बदले आप उसे गाली सुना रहे हो। मेरे प्यारे भाई, उसे धन्यवाद दो और कोई गीत गा न सको तो गुनगुनाओ ही''''''मेरी भी आँखें बन्दरों की कृपा से ही फूटी है। बन्दरों ने मुझ पर हमला किया। मैं डर-कर भाग पड़ा। कब सामने झाड़ी आई और उसकी दो छोटी-छोटी टहनियाँ कब सलाखें बनकर मेरी आँखों में समा गयीं, मुझे पता नहीं। पर''''''पर सच मानना मेरे दोस्त! मेरे मुँह से बन्दरों के लिए एक बार भी गाली नहीं फूटी, बल्कि ये संगीत के स्वर फूट पड़े''''''यही संगीत के स्वर, जिन पर आप मुग्ध है।

जिन खोजा तिन पाइयां

अवसर खोजने वाले अवसर खोज लेते हैं और बहाना खोजने वाले बहाना।

एक गाँव में श्रमदान से चौपाल बना रहे थे लोग। गाँव के स्त्री-पुरुष, बच्चे-बड़े सब किसी न किसी काम में जुटे थे। मजबूत लोग कठिन परिश्रम का काम कर रहे थे और कमजोर लोग हल्के श्रम का। केवल एक आदमी उदास खड़ा था और काम करते हुए लोगों को देख रहा था।

गाँव का सरपंच उसके पास गया और प्यार से बोला, 'मेरे प्यारे भाई! तुम्हें भी काम में हाथ बँटाना चाहिए, यह सामूहिक काम है, सब का काम है।'

उस आदमी ने सरपंच को आड़े हाथों लिया—'आप मुझसे काम की कहते हैं, किन्तु आपने यह नहीं सोचा कि मैं तीन दिन से भूखा हूँ।'

'माफ करना भाई ! तुम्हारा काम करना तो स्पष्ट दिखाई दे रहा है, किन्तु भूख तुम्हारे पेट के अन्दर है, जो तुम्हें ही अनुभव हो रही है। अब तुमने मुझे बताया तो मालूम हुआ कि तुम भूखे हो, चलो मेरे घर। खूब भर पेट भोजन करलो।'

वह आदमी प्रसन्नता पूर्वक मुखिया के घर चला गया और वहाँ छक कर भोजन किया।

भोजन कराने के बाद मुखिया उससे बोला—'चलो, अब अपनी शक्ति-भर श्रमदान करना।'

सरपंच साहब ! मुखियाजी !! अब तो काम बिल्कुल ही नहीं कर सकता। आपने इतना भोजन खिला दिया है कि अब तो एक कदम चलना तो दूर उठने को भी हिम्मत नहीं हो रही है। आप एक खटिया बिछवा दीजिए। मैं आपके यहाँ ही पड़ा रहूँगा।'

★

निर्लिप्तता

वुडरो विलसन न केवल अमेरिका के राष्ट्रपति-पद की शोभा भी बढ़ा चुके थे, बल्कि जबर्दस्त विद्वान और विचारक भी थे। उनकी लम्बी बीमारी के बाद भी जब स्वास्थ्य में सुधार दिखाई न दिया तो एक दिन उनके एक अभिन्न मित्र ने उनसे कहा—'मित्र ! अब तो शायद आपका समय निकट है।'

वुडरो विलसन मुस्कराकर बोले—'और प्यारे दोस्त ! मैं मृत्यु का स्वागत करने के लिए पूरी तरह तैयार हूँ।

दृढ़-प्रतिज्ञ

पंजाब के एक छोटे-से गाँव का लड़का था गंगाराम। मैट्रिक परीक्षा उत्तीर्ण करने के बाद वह शहर में इञ्जीनियर के कार्यालय में काम कर रहे अपने चाचा के पास नौकरी की तलाश में गया। जब वह अपने चाचा के कार्यालय में पहुँचा तो वह इञ्जीनियर महोदय के साथ कहीं दौरे पर गया था। गाँव का लड़का था, ऑफिस की जो कुर्सी सबसे बढ़िया दिखाई दी, उसी पर बैठ गया।

कुछ देर बाद चपरासी अन्दर आया और उसने एक गँवार लड़के जो इञ्जीनियर साहब की कुर्सी पर बैठे देखा तो वह क्रोध ते तमतमा कर बोला—'चलबे लड़के ! उठ। इस पर बैठने का साहस तूने क्यों किया ? यह तो साहब की कुर्सी है।'

गंगाराम क्या करता ? उठना पड़ा। किन्तु उनको मर्मान्तिक पीड़ा हुई उस अपमान से। उसने मन ही मन प्रतिज्ञा की कि वह इञ्जीनियर बन कर रहेगा। जब तक इञ्जीनियर नहीं बन जाता, नौकरी का नाम भी न लेगा।

जब उसकी अपने चाचाजी से मुलाकात हुई और उन्होंने आने का कारण पूछा तो गंगाराम बोला 'चाचा जी, मैं आया तो था—नौकरी की तलाश में, पर अब तो आपके पास रह कर पढ़ूँगा।'

सारी बात सुनकर चाचा बहुत प्रसन्न हुआ। उसने गंगाराम का साहस बढ़ाया और गंगाराम ने मन लगा कर पढ़ाई की।

अपनी लगन और घनघोर परिश्रम के बल पर न केवल वह प्रथम श्रेणी का इन्जीनियर ही बना, बल्कि उसके 'सर' की उपाधि भी प्राप्त की और देश भर में नाम कमाया।

★

भूल का दण्ड

बात है सन् 1925 की। न्यूयार्क (अमेरिका) के यहूदी अस्पताल का खजांची एक दिन मोटी रकम लेकर बैंक जा रहा था। मार्ग में उसे डाकुओं ने घेर लिया। डाकुओं का सरदार बोला—'छीन लो, इस बदमाश का बैग। बचकर न जाने पाये।'

खजाञ्ची ने रुआँसे स्वर में कहा—'भाई! यह पैसा मेरा नहीं है, अस्पताल का है। यदि आप लोग इस पैसे को छीन लोगे तो अस्पताल की चिकित्सा में कमी आवेगी। रोगी और दीन दुखी आपको कोसेंगे।'

'हमें बहाने पसन्द नहीं! लाओ, अपना थैला मुझे सौंप दो। कड़कती आवाज ने डाकू सरदार दहाड़ा।

'मेरे भाई! जो दान देखकर अस्पताल चलाते हैं, वे भी आपके ही भाई हैं। अस्पताल के धन में आपको कुछ हथियाना शोभा तो नहीं देता, वैसे आपकी मर्जी!' यों कहकर खजाञ्ची ने नोटों का थैला डाकू सरदार की ओर बढ़ा दिया।

किन्तु खजाञ्ची की उस मार्मिक बात का असर डाकू सरदार पर ऐसा हुआ कि उसने न केवल उसका छीना हुआ थैला वापिस कर दिया, बल्कि कुछ रकम अपने पास से भी अस्पताल की सहायता हेतु दान में दे दी।

❀

सुखद वर्षा

महर्षि सुकरात की पत्नी अपने बचपन से ही अत्यन्त कटु-भषिणी थीं। भाग्य से जब उसे पति भी निठल्ला मिला तो उसके स्वभाव की कटुता और अधिक बढ़ गई।

सुकरात दिन-रात सत्य की खोज में व्यस्त रहते, अपने मित्रों और शिष्यों से घिरे हुए। कमाना-धमाना तो दूर, वह अपनी पत्नी की खोज-खबर भी नहीं रख पाते थे।

एक दिन नित्य की तरह जैसे ही दिन-छिपे सुकरात ने घर में प्रवेश किया कि क्रोध में भरी हुई उनकी पत्नी ने उनके ऊपर एक घड़ा ठण्डा जल उँड़ेल दिया और फिर लगी जोर-शोर के साथ बड़बड़ाने। भयंकर सर्दी, उस पर बर्फ जैसा ठण्डा पानी। पर महर्षि हंसकर बोले, 'सुना था कि गरजने वाले बादल बरसते नहीं हैं, किन्तु आज तो गरजने वाले बादल से सुखद वर्षा भी हो गई।

❀

करत-करत अभ्यास के....

डिमास्थनीज बोलने में न केवल तुतलाता था बल्कि हकलाता भी था। एक दिन वह अपने नगर की सभा में एक प्रसिद्ध वक्ता का भाषण सुनकर वह बहुत प्रभावित हुआ और उसने मन ही मन अच्छा वक्ता बनने का संकल्प भी कर लिया।

वह जानता था कि उसकी तुतलाहट और हकलाहट उसके मार्ग में रोड़े बिछायेंगी, किन्तु इसके साथ ही यह बात भी उसे मालूम थी कि निरन्तर कठिन परिश्रम और नियमित साधना से उस कठिनाई पर भी विजय पाना भी असंभव नहीं।

बस, फिर क्या था—उसने नित्य नियमित रूप से भाषण देने का अभ्यास करना शुरू कर दिया। वह सागर के तट पर जा पहुँचता और सागर की लहरों को श्रोताओं का समूह मानकर जोर-शोर से भाषण करता, अत्यन्त नाटकीय प्रदर्शन के साथ।

नियमित रूप से किया गया परिश्रम और अभ्यास ऐसा रंग लाया कि वह थोड़े दिनों में ही प्रसिद्ध वक्ता बन गया।

★

विनम्रता

महान वैज्ञानिक न्यूटन मृत्यु-शय्या पर पड़े थे। कुछ मित्र उनसे मिलने गये। न्यूटन ने मधुर मुस्कान से उनका स्वागत करते हुए कहा—'अपनी चलने की तैयारी है दोस्तो!'

आपके लिए यह तो गर्व की बात है कि आप जीवन में प्रकृति के अनुपम रहस्यों को उजागर करने में सफल हो सके।' मित्रों ने कहा।

'मित्रो! गर्व की कोई बात नहीं। विशाल सागर के तट पर खेलने वाले बच्चों के हाथ जिस प्रकार संयोग से कुछ सीप और चमकीले पत्थर लग जाते है, उसी तरह मेरा जीवन समझो। प्रकृति के अनन्त सागर के रहस्य जनना तो दूर, मैं तो अभी उसमें एक डुबकी भी नहीं लगा पाया हूँ।

सच्चे अधिकारी

सन् 1925 में जब जार्ज बर्नार्ड-शा को नोबल–पुरस्कार दिया गया तो उन्होंने केवल मानपत्र ही स्वीकार किया और धनराशि (लगभग ढाई लाख रुपया) को यह कह कर वापिस कर दिया कि इसे स्वीडन के उन लेखकों में बाँट दिया जाय जिन्हें वास्तव में धन की जरूरत है।

सौजन्य

प्रथम विश्वयुद्ध के सेनापति मार्शल फोक के सम्मान में भोज चल रहा था। सभी लोग आपस में चुटकियाँ भी ले रहे थे और दावत भी उड़ा रहे थे। एक अमेरिकन बोला—फ्रान्सीसी लोग केवल सौजन्य और प्रेम की बातें करते ही दिखाई देते हैं, केवल हवाई बातें ! वास्तव में इनके जीवन में हवा के अलावा कुछ होता ही नहीं।'

'मेरे प्रिय भाई ! टायर-ट्यूब में भी हवा के अलावा कुछ नहीं होता। पर इस बात को तो आप अच्छी तरह जानते हो कि हवाई टायर यात्रा को कितना सरल और सुखद बना देता है।' मार्शल फोक ने मुस्कराते हुए कहा।

★

सेर को सवासेर

'महाराज ! मेरे चारों ओर शत्रुओं ने घेराबन्दी करली हैं। उन्हें परास्त करने के लिए मुझे क्या करना चाहिये ?' एक शक्तिशाली सामन्त ने यूनान के महान दार्शनिक डायोजीनस से पूछा।

'तुम्हें उन सबसे अधिक शक्ति अर्जित करनी चाहिए— विद्वता की सरलता की, और इन्सानियत की। किसी को जीतने के लिए उससे सवाया बल तो आवश्यक है न ?'

❀

भय

महान् दार्शनिक कन्फ्यूशस अत्यन्त भ्रमण-प्रिय थे। एक बार वे घूमते-घूमते किसी अन्य देश में जा पहुँचे। वहाँ के शासक ने उनका यथेष्ट स्वागत-सम्मान किया।

सन्त कम्फ्यूशस अभी दरबार में ही उपस्थित थे कि एक दरबारी तीन पिंजड़े लेकर वहाँ आ पहुँचा। एक पिंजड़े में एक चूहा बन्द था, दूसरे पिंजड़े में बिल्ली और तीसरे पिंजड़े में एक बाज।

उन तीनों के पिंजड़े में सबको अत्यन्त प्रिय लगने वाले खाद्य-पदार्थ भी रखे थे, किन्तु आश्चर्य यह था कि न तो अपने

खाद्य को चूहा, न बिल्ली और न ही बाज खा रहा था। बल्कि वे सब टकटकी लगाकर एक-दूसरे के पिंजड़े की ओर देख रहे थे।

दरबारी ने राजा से इसका कारण पूछा तो वह न बता सका। राजा ने सन्त कन्फ्यूशस से उसका कारण बताने का आग्रह किया तो वे बोले–'राजन्, इसका कारण है भय! मूषक-तो बिल्ली और बाज दोनों से भयभीत है। बिल्ली—बाज के रूप में अपनी मृत्यु को प्रत्यक्ष देखकर पीड़ित है और बाज को इस आशंका के रूप में भय है कि यदि वह अपने पिंजड़े में रखे भोजन की ओर ध्यान देगा तो चूहे और बिल्ली अवश्य ही भाग जायेंगे।

'राजन्, भय की यही विशेषता है। यह अपनी कल्पना के द्वारा अपने मन में स्वयं ही पैदा किया जाता है। ये सब तो अज्ञानी जीव-जन्तु हैं, किन्तु स्वयं को महान ज्ञानी मानने वाला इन्सान भी भय से मुक्त नहीं रह पाता।'

*

कर-कमल

प्रदर्शनी में प्रदर्शित भगवान् अपोलो की उस भव्य मूर्ति को देखने वालों में यूनान के प्रमुखतम व्यक्ति—राजा पैरीक्लीज, रानी एस्पेसिया, महान् सन्त सुकरात व परम विद्वान साफोक्लोज आदि उपस्थित थे और सभी एक स्वर से मूर्त्तिकार के कला-कौशल की हृदय से सराहना कर रहे थे।

जब कलाकार का नाम पूछा गया तो भीड़ में सन्नाटा! कलाकार का नाम किसी को पता ही न था। आश्चर्य की बात थी—इतना अनोखा कलाकार स्वयं को छिपाये हुए क्यों?

काफी खोज बीन के पश्चात् राज्य-कर्मकारी एक काले-कलूटे युवक को पकड़कर लाये और राजा से बोले—'महाराज, गजब हो गया ! इस गुलाम ने भगवान् अपोलो की पवित्र मूर्त्ति बनाई है ।'

दर्शकों में कुछ धर्म-गुरु भी खड़े थे । वे चिल्लाये—'पापम् शान्तम् ! गजब !! महान गजब !!! इस गुलाम को भगवान अपोलो की मूर्त्ति गढ़ने का अधिकार किसने दिया । इसके हाथ काट लिये जाने चाहिये ।'

राजा ने उन कर्मचारियों की ओर आँखें तरेर कर देखते हुए कहा—'छिः, कैसा अन्धा धर्म है तुम्हारा ? भगवान की मूर्त्ति बनाने वाले इन सुन्दर हाथों के प्रति तुम्हारा ऐसा निर्णय ? मैं इसे मानने को तैयार नहीं ।' यों कहकर राजा ने उस गुलाम युवक के हाथ अपने हाथों लेकर चूम लिए ।

चाटुकार धर्माचार्यों को बात बदलते क्या देर लगती ? वे तुरन्त राजा की महानता की प्रशंसा करने लगे ।

तेरे काँटों से भी प्यार...

दक्षिणी ध्रुव की खोज-अभियान को जीवन-समर्पित कर देने वाले सर रार्बट स्काट की डायरी, उनके बाद में जाने वाले खोजी-दल के हाथ लगी । डायरी को पढ़कर स्काट महोदय के अदम्य साहस और अद्‌भुत जीवन का पता चलता है । डायरी के शब्दों में—'यहाँ भयंकर शीत है और हमारे शरीर इतने क्षीण हो चुके हैं कि हमारा यह अभियान भी अपूर्ण ही रहेगा

और वापिस लौट सकने की क्षमता भी हम में नहीं हैं। फिर भी हम परम प्रसन्न हैं। हमें अपने सौभाग्य पर गर्व है। हम अपने तम्बू में मनमोहक गीत गाते हैं, चंचल और स्वछन्द चिड़ियों की तरह चहकते हैं, हमें आनन्द ही आनन्द है।'

होनहार

अंग्रेजी के प्रकाण्ड विद्वान्, इंग्लैण्ड निवासी टामसकूपर ने आठ वर्षों के अपने अथक और घनघोर परिश्रम के बाद अंग्रेजी के विशालतम शब्दकोष का लगभग 2/3 भाग तैयार कर चुके थे।

एक दिन जब वे घर से बाहर जाने लगे तो उनकी पत्नी ने उन्हें बाजार से लाने योग्य सामान की सूची दी तथा यह ताकीद कर दी कि वे सूची की सामग्री अवश्य लेते आवें, किन्तु कूपर को भला घर की सामग्री का ध्यान कहाँ रहता?

जब वे शाम को खाली हाथ घर लौटे तो उनकी पत्नी क्रोध से बिफर उठी और उनके द्वारा तैयार किये गये शब्दकोष को चूल्हे में झोंक दिया।

जब पत्नी ने अपने कारनामे कूपर महोदय को सुनाये तो वे मुस्कराकर बोले—'कोई बात नहीं, मैं स्वयं भी शब्दकोष में कुछ संशोधन करने का विचार कर रहा था। हाँ, इतना जरूर है कि अब आठ वर्ष पुनः परिश्रम करना पड़ेगा।'

होनहार को स्वीकार तो करना ही पड़ता है—कोई हँस-कर स्वीकार करता है तो कोई रो-कलप कर।

अकाल-मृत्यु

सत्य तो कटु होता ही है, सन्त सुकरात की सच्ची बातें भी लोगों को बुरी लगीं। युवकों को बहकाने व नास्तिकता के अपराध में उन्हें जेल भेज दिया गया।

जब वे जेल में बन्द थे तो एक दिन उसके कुछ शिष्य उनसे मिलने गये और बोले—'गुरुवर ! हम आपको (सुयोग देखकर) किसी दिन जेल से निकाल ले जायेंगे।'

'क्या मेरे ऊपर लगा हुआ अभियोग हटा लिया गया है ?' पूछा महर्षि ने।

'नहीं गुरुवर ! हम ऐसी व्यवस्था कर रहे हैं कि जेल-अधिकारियों की आँखों में धूल झौंककर आपको जेल से निकाल सकें।'

'नहीं वत्स ! ऐसी भूल मत करना। वह तो मेरी भयानक-मृत्यु होगी। क्या तुम मेरा ऐसा घृणित अन्त चाहते हो ? मुझे अकाल-मृत्यु के हाथों सौंपना चाहते हो ?'

शिष्यों के पास महर्षि के इस प्रश्न का कोई उत्तर न था, वे लौट गये।

न्यायालय से सन्त सुकरात को विष द्वारा मृत्यु-दण्ड मिला, किन्तु विष का प्याला भी महर्षि का नाम मिटा न सका। वे अमर हैं।

★

शानदार पटाक्षेप

5 जून 1910 को दोपहर-वेला थी। सुप्रसिद्ध कथाकार ओ० हेनरी मरणासन्न थे, किन्तु वे अपने समीप बैठे मित्रों से हँस-हँस कर बातें कर रहे थे।

उनकी उस जिन्दा-दिली को देखकर एक मित्र बोला, 'बन्धु ! अत्यन्त शानदार जीवन जीने के बाद यह अन्तिम घड़ी तो अत्यन्त दुखदायी प्रतीत हो रही होगी।'

'नहीं मित्र !' मृत्यु भी शानदार जीवन का अन्तिम छोर है—अत्यन्त सफल और भव्य नाटक का अन्तिम पटाक्षेप ! भला यह दुखदायी कैसे हो सकता है ? मैं परम प्रसन्न हूँ !' और उसी रात को उस महान कलाकार का निधन हो गया।

☆

निन्दक नियरें राखिये

जब रूस में जार का शासन था, तो उसके मन्त्री थे काउण्ट विट्टे महोदय। एक बार उन्होंने अपने आलोचकों की सूची तैयार करायी। कुछ दिनों बाद जब उनका निजी सचिव लगभग एक हजार नामों की सूची लेकर उनके पास पहुँचा तो उन्होंने अपने सबसे तीव्र दस आलोचकों के नाम के आगे निशान लगाये। सचिव ने पूछा–'क्या ये नाम पुलिस को दे दिये जायें ?

'नहीं, मैं उन्हें अपना सलाहकार नियुक्त करना चाहता हूँ।' श्री काउण्ट विट्टे ने कहा।

❀

आँखों के अन्धे

पर-निन्दा के घोर विरोधी थे—महान आगस्टिन। जहाँ वे बैठते थे, उस कमरे में उन्होंने मोटे अक्षरों में लिखवा रखा था—'अच्छा हो पर-निन्दा करने की बजाय हमारा वार्तालाप आवश्यक और उपयोगी विषय पर ही हो।'

यद्यपि उनके सभी मित्र उनके स्वभाव से परिचित थे, फिर भी एक दिन एक मित्र ने उनसे किसी की निन्दा करना शुरू कर ही दिया। इस पर वे मित्र से बोले—'आप मुझे इतने प्रिय हो कि न तो आपकी बातें सुनने से इनकार कर सकता हूँ और न आपको यहाँ से चले जाने को ही कह सकता हूँ, अब विकल्प केवल एक ही है कि जो चेतावनी-बोर्ड मैंने टाँग रखा हैं, इसे उतार दूं।'

बोर्ड पर निगाह पड़ते ही मित्र को अपनी भूल मालूम हो गई। वह सन्त आगस्टिन से क्षमा माँगकर चला गया।

❀

नयनों की भाषा

एक युवक किसी सामान्य नौकरी की आकांक्षा लेकर सर श्रीराम के पास पहुँचा। उन्होंने उस युवक की आँखों में अपनी आँखें डालदीं और कुछ क्षण तक अपलक निहारते रहे फिर बोले—'बेटे, तुम्हारी प्रतिभा और योग्यता उस पद से बहुत

अधिक है, मैं तुम्हें अपनी मिल के एक विभाग का मैनेजर नियुक्त करता हूँ ।'

आनन्दातिरेक से युवक के नेत्र गीले हो गये । वह भावुक हो उठा । सेठजी के चरण छूकर बोला—'सर विशेष पढ़ा-लिखा न होने पर भी आप इतना महत्वपूर्ण पद मुझे सौंप रहे हैं । आपकी इस उदारता का बदला मैं अथक परिश्रम करके चुकाऊँगा । आपका बहुत-बहुत धन्यवाद !'

'मुझे कागज पर लिखी लम्बी-चौड़ी डिग्रियों से अधिक किसी व्यक्ति के अन्तर में छिपी उसकी योग्यता पर अधिक भरोसा रहता है । मैंने तुम्हारे नेत्रों की भाषा पढ़कर यह जान लिया है कि तुम इस पद की प्रतिष्ठा को बखूबी निभाओगे । जाओ, आज ही अपना कार्यभार सम्भाल लो ।'

❀

मुसीबत का सामना

एक बार स्वामी विवेकानन्द किसी पहाड़ी तलहटी में यात्रा कर रहे थे । उस पहाड़ी पर बन्दर बहुत थे । बन्दर तो उत्पाती होते ही हैं, स्वामीजी पर खों⋯खों⋯करते हुए झपट पड़े । बन्दरों से डरकर स्वामीजी भाग पड़े । स्वामीजी को डरा हुआ देखकर बन्दर और अधिक तेजी से पीछा करने लगे ।

उन्हें दूर से किसी व्यक्ति ने देखा । वह व्यक्ति चिल्लाया-'स्वामीजी, डरिये मत, बन्दरों को डाँटते हुए खड़े हो जाइये और जमीन से पत्थर का टुकड़ा उठाने का अभिनय करिये ।'

स्वामीजी ने वैसा ही किया तो बन्दर डर कर इधर-उधर भाग गये। तब स्वामीजी ने सोचा—'सच है, मुसीबत से पीछा छुड़ाकर भागना नहीं चाहिए, बल्कि साहस के साथ उसका सामना करना चाहिए।'

❀

होनहार बिरवान के....

एक आठ वर्षीय बालक अपने घर के एकान्त कोने में बैठा हुआ छोटे-छोटे छन्दों की तुकबन्दियाँ कर रहा था। उसका पिता यह नहीं चाहता था कि उसका छोटा-सा बेटा पढ़ाई-लिखाई से ध्यान हटाकर कविता के चक्कर में पड़े। वह इस काम के लिये पहले भी एक-दो दिन उसे डाँट चुका था।

जब उसने उस दिन उसे चोरी-छिपे कविता करते देखा तो वह उत्तेजित हो उठा और छड़ी उठाकर उसे पीटने लगा। पहली छड़ी पड़ते ही बच्चे के मुख से कविता फूट पड़ी-

'फादर-फादर ! पिटी टेक !
नो मोर शैल आई वर्सेज मेक !!

अर्थात् 'पिताजी, मुझे मारिये मत, मैं अब भविष्य में कविता न करूँगा।'

बिना प्रयास ही अपने पुत्र की इतनी प्यारी कविता सुनी तो पिता का क्रोध शान्त हो गया। उसने प्रसन्न होकर बेटे को गोद में उठा लिया और चूमते हुए बोला—बेटे ! तुम अद्भुत प्रतिभाशाली हो। तुम खूब कविता किया करो, भविष्य में तुम महान् कवि बनोगे।'

पिता के द्वारा प्रशंसा और कविता की छूट पाकर बच्चा खिल उठा। उसने मन लगाकर कविता का अभ्यास किया और एक दिन अंग्रेजी का प्रसिद्ध कवि बना।

उस बच्चे का नाम था—अलेक्जेण्डर पॉप !

❀

अनोखा प्रयोग

एक अनाथ व निर्धन छात्र एक प्रसिद्ध डॉक्टर के पास जाकर बोला —'डॉक्टर साहब, मेरे पेट में पथरी है, आप ऑपरेशन कर दें।'

उचित जाँच के बाद डॉक्टर ने कहा—'ऑपरेशन में एक हजार रुपया खर्च होगा। आप रुपये जमा करा दीजिए।'

छात्र ने कहा—'डॉक्टर साहब, मैं अत्यन्त निर्धन हूँ व अभी बेरोजगार हूँ, किन्तु शीघ्र ही मुझे नौकरी मिल जाने की सम्भावना है। आप ऑपरेशन कर दें, नौकरी लगने के बाद मैं आपका पूरा रुपया मय ब्याज के चुका दूँगा।'

डाक्टर के सामने इस प्रकार का प्रस्ताव सर्वथा नया था, किन्तु उसने उस युवक की बात पर विश्वास करके ऑपरेशन कर दिया। वह भला-चंगा होकर अपने घर लौट गया।

लगभग ड़ेढ़ वर्ष बाद डाक्टर को कृतज्ञता-ज्ञापन के पत्र के साथ ही उस लड़के का एक हजार दो सौ पचास रुपये का बैंक-ड्राफ्ट मिला तो डाक्टर का मन स्नेह से भर उठा। उसने तुरन्त एक हजार रुपये का ड्राफ्ट उस लड़के के नाम का और

बनवाया तथा दोनों ड्राफ्ट भेजते हुए लिखा—'प्रियवर ? दृढ़ता-पूर्वक वचन-पालन करने का छोटा-सा पुरस्कार भी साथ में है। इस रकम को बैंक में जमा करा देना, तुम्हारा भविष्य सुखद हो।'

❀

कुछ पता नहीं

'कहाँ, कब किस आयु या परिस्थिति में मृत्यु से भेंट हो—क्या पता ?

हे प्रभु !—

उजाला अपनी यादों का हमारे साथ रहने दो,
न जाने किस कदम पर जिन्दगी की शाम हो जाये !

हमारे कुछ पूज्य और आराध्य महामानवों को जीवन-लीला का अन्त किस ढंग से और किन परिस्थितियों में हुआ। जरा देखें तो—

महात्मा गौतमबुद्ध का प्राणान्त रक्त-स्राव की घोर-पीड़ा से हुआ। 32 वर्ष की आयु में स्वामी शंकराचार्य की मृत्यु भगंदर की पीड़ा से हुई। स्वामी बल्लभाचार्य व स्वामी रामतीर्थ ने भी 33 वर्ष की अल्पायु में ही गङ्गा में जल-समाधि लेकर अपनी जीवन लीला समाप्त की। गोस्वामी तुलसीदास की मृत्यु से पूर्व असह्य हाथ का दर्द हुआ। 30 वर्ष की अल्पायु में स्वामी विवेकानन्द मलेरिया और मधुमेह से ग्रस्त होकर विदा हुए। स्वामी रामकृष्ण परमहंस की मृत्यु मुख के कैंसर से हुई व महर्षि रमण की पीठ के कैंसर से।

स्वामी दयानन्द विष दिये जाने से, स्वामी श्रद्धानन्द व महात्मा गाँधी क्रमशः बन्दूक व रिवाल्वर की गोलियों से शहीद हुए। लाला लाजपतराय लाठी-बहार से तथा लाला हरदयाल व सन्त सुकरात विष दिये जाने से शहीद हुए। प्रभु यीशु को क्रूस पर चढ़ाया गया।

सरदार भगतसिंह, कर्त्तारसिंह, ऊधमसिंह, रामप्रसाद बिस्मिल, अश्फाक उल्लाह खाँ, मदनलाल डींगरा, खुदीराम बोस आदि क्रान्तिकारियों को फाँसी का फन्दा चूमना पड़ा। अगणित वीरों को मुसलमान व अंग्रेजी सरकार के दमन-चक्र में पिसकर अपने प्राणों की बलि देनी पड़ी।

मुसोलिनी अपने ही सैनिकों की गोली से मरा, हिटलर व लार्ड क्लाइव ने तपेदिक से पीड़ित होकर प्राण छोड़े।

अगणित भारतीय नारियों ने अपने दिवंगत पतियों के साथ सती होकर जीवन का होम किया। प्रत्येक राजनीतिक परिवर्तन व प्राकृतिक ताण्डव तो अगणित व्यक्तियों का मृत्यु-सन्देश लेकर आता ही है, यातायात के सुखदायी साधन व विद्युत्-उपकरण भी मानव-जीवन के साथ अपनी क्रूर-लीला करते ही रहते हैं।

यह चित्रण निराश होने के लिए नहीं, बल्कि अत्यन्त उत्साह-पूर्वक अपने कर्तव्य-पथ पर द्रुत-गति से आगे बढ़ने का सन्देश है—

'कालि करे सो आज करि, आज करे सो अब्ब।
पल में परलय होयगी, फेरि करेगो कब्ब॥

❀

अद्‌भुत रत्न

एक घमण्डी राजा का जन्म-दिन था। जन्म-दिन धूम-धाम से मनाया जा रहा था। वहाँ की परम्परा के अनुसार उत्सव में सम्मिलित होने वाला प्रत्येक व्यक्ति कोई न कोई उपहार लेकर आया था। उत्सव में एक साधु भी आया, लेकिन बिल्कुल खाली हाथ !

जब सब अपनी भेंट राजा को दे चुके तो साधु का नम्बर आया। साधु ने राजा को हाथ उठाकर आशीर्वाद दिया- 'कल्याण हो राजन् !'

उस साधु का मीठे वचनों से सत्कार करना तो दूर ! राजा क्रोध से दाँत पीसता हुआ बोला—'मेरे लिए भेंट क्या लाये हो ?'

साधु समझ गया कि राजा मूर्ख और अहंकारी है। उसे सीख देने के उद्‌देश्य से साधु मुस्कराकर बोला—'राजन् ! तुम्हारे कोष में तरह-तरह के रत्नों का भण्डार होगा, तुम्हारे भण्डार-घर में समस्त संसार की सभी दुर्लभ वस्तुयें होंगी, यह सोचते हुए मैं उपहार देने योग्य कोई वस्तु सोच ही न सका। आप अपनी वैभव-सामग्री को एक बार गौर से देख लीजिये, जिस वस्तु की आपके पास कमी होगी, वही वस्तु मैं उपहार में दे जाऊँगा।'

यह तो उस घमण्डी राजा के गाल पर दूसरा तमाचा था। वह मन ही मन झल्लाया और क्रोधपूर्वक साधु से बोला—

'साधुजी, मेरे पास किसी वस्तु की कमी नहीं है । भला विशाल राज्य के स्वामी के पास किस चीज की कमी हो सकती है ?'

साधु मुस्कराकर बोला—'राजन्, तुम्हारे राज्यकोष में भले ही मूल्यवान रत्नों के अम्बार लगे हों, किन्तु तुम्हारा हृदय-कोष तो कूड़ा कर्कट से ही भरा है । मैं प्रभु से प्रार्थना करता हूँ कि वह तुम्हारे हृदय-कोष को भी 'लोक व्यवहार निपुणता' रूपी अनमोल रत्नों से भर दे ।' यों कहकर साधु अपनी खड़ाऊँ खटकाता हुआ चला गया ।

साधु के जाते ही राजा के हृदय में अपनी भूल के प्रति चेतना जागी । वह अपने किए पर पछताने लगा । उस दिन से उसके व्यवहार में क्रोध के स्थान पर नम्रता आ विराजी ।

❀

ज्ञान का भेद

लोकमान्य पं० बाल-गंगाधर तिलक जब अपनी विद्वता के लिए विख्यात हो गये तो एक दिन एक जिज्ञासु व्यक्ति उनके पास पहुँचा और विनम्र शब्दों में बोला—'पण्डितजी आपने इतनी विपुल विद्वता और अगाध ज्ञान कैसे अर्जित किया है ? मैं इस रहस्य को जानना चाहता हूँ ।'

पं० जी मुस्कराकर बोले—'प्रियवर, संसार अगाध-ज्ञान का अथाह सागर है । मैं तो अभी उसकी कुछ बूँदें ही पा सका हूँ, अभी तो बहुत कुछ पाने की लालसा है । केवल लालसा ही नहीं, उसे पाने को कठोर श्रम भी नियमित रूप से करता हूँ ।'

'बस, महाराज ! मैं भेद जान गया । मेरा मन्तव्य पूरा हो गया ।

'क्या जान गये ?' तिलक महाराज ने पूछा।

'अपने ज्ञान का अभिमान त्याग कर कठोर परिश्रम करते रहना व ज्ञान-पिपासा को जाग्रत रखना, यही उन्नति का मूल मन्त्र है।' यों कहकर वह व्यक्ति चला गया।

❀

खेल कुदरत का

एक बहुत बड़े सिगरेट उद्योग के स्वामी की करोड़ों पौण्ड की धनराशि जमा हो जाने पर बैंक का मैनेजर उनसे मिला और बोला—'मान्यवर! हमारे बैंक में आपका कितना धन जमा है?'

उद्योगपति मुस्कराकर बोला—'हिसाब-किताब रखना तो बैंक का काम है। रख-रखाव और हिसाब-किताब के झंझट से बचने के लिए ही तो मैंने आपके बैंक में खाता खोला था, मुझे क्या पता था कि.......'

'आप चिन्तित न हों महोदय! हमारे यहाँ तो आपके एक-एक पैसे का हिसाब है, किन्तु आप कभी कोई रकम निकालते नहीं हो, केवल जमा ही कराते हो, इसलिए मैंने आपसे यह प्रश्न पूछ लिया था।'

'मुझे रकम निकालने की जरूरत ही नहीं पड़ती। मेरा कारोबार खूब मुनाफा दे रहा है।' उद्योगपति ने कहा।

'हमारे यहाँ आपकी मोटी रकम जमा हो गई है, हमारे यहाँ ब्याज भी मामूली है, आप इस रकम को किसी अधिक उपार्जन योजना में क्यों नहीं लगा देते?' बैंक-मैनेजर ने प्रश्न किया।

'मैं अनपढ़ आदमी हूँ महोदय ! आप कोई योजना बताइये, मैं उसी में धन लगा दूँगा।' उद्योगपति ने शान्त भाव से कहा।

'हैं........' आश्चर्य से चौंकते हुए बैंक-मैनेजर बोला, 'आप अनपढ़ हैं ? हे भगवान ! आपने अनपढ़ होकर इतनी दौलत पैदा की है ? यदि आप पढ़े-लिखे होते तो पता नहीं कितना धन पैदा करते ?'

'यदि मैं पढ़ा-लिखा होता तो.......' मुस्कराता हुआ उद्योगपति बोला, 'तो महाशय ! मैं चर्च का पादरी होता। क्योंकि मेरे अनपढ़ होने के कारण ही वह पद मुझे न मिल सका था। मेरी सारी कमाई मेरे अनपढ़ होने का ही परिणाम है।'

❀

असीम धैर्य

सन्त एकनाथ नित्य नियमित रूप से गोदावरी में स्नान करते थे। एक दिन जब वे नित्य की भाँति स्नान करके लौट रहे थे, तो मार्ग में एक सराय में रहने वाले एक पठान ने उनके ऊपर कुल्ला कर दिया। सन्त ने उससे कुछ न कहा और चुपचाप पुनः स्नान करने को लौट पड़े।

जब वे पुनः स्नान करके लौटे, तो उस पठान ने फिर उनके ऊपर कुल्ला कर दिया। सन्त फिर स्नान करने चले गये।

ऐसा 10 या 20-5 बार नहीं हुआ, बल्कि उस पठान को उस दिन न जाने क्या सनक सवार हो गई कि उसने बार 108 बार सन्त एकनाथ के ऊपर कुल्ला कर करके उन्हें पुनः-पुनः स्नान करने को विवश किया।

जब सन्त एक सौ आठवीं बार स्नान करके लौटे तो उस पठान का हृदय-परिवर्तन हुआ। वह सन्त के चरणों में गिरते हुए बोला—'महात्मन ! मेरी मक्कारी को आपकी साधुता ने परास्त कर दिया। आप धन्य हैं ! आप महान हैं !! आप सच-मुच सन्त हैं !!! मेरा कसूर माफ कर दो।'

सन्त मुस्कराते हुए बोले—प्यारे भाई ! तुमने कसूर कहाँ किया ? तुमने तो मेरे ऊपर उपकार ही किया है। मैंने अब तक के जीवन में एक दिन में पाँच बार से अधिक कभी गोदावरी-स्नान नहीं किया था। आज तुम्हारी कृपा से 108 बार गोदावरी-स्नान का सुयोग मिला। तुम्हारी इस कृपा के अनेकशः धन्यवाद !'

*

उदारता की पराकाष्ठा

एक वेश्या के बहकावे में आकर महर्षि दयानन्द को उन्हीं के रसोइया ने भोजन में बिष दे दिया।

जब महर्षि के शिष्यों को यह भेद ज्ञात हुआ तो उन्होंने रसोइया की खोज की और वे उसे पकड़कर महर्षि के सामने लाये।

विष और पिसे हुए काँच से यद्यपि महर्षि की आँतें कट रही थीं। वे भयंकर दर्द से पीड़ित थे, किन्तु फिर भी उनके चेहरे पर दिव्य आभा और मधुर मुस्कान थी। स्वामीजी ने रसोइया से पूछा—'जगन्नाथ ! तुमने ऐसा काम किया क्यों ?'

'स्वामीजी, मेरा अपराध क्षमा करें। उस वेश्या ने मुझे इस काम के लिए धन देने को कहा था। मेरी आँखों पर लोभ का पर्दा पड़ गया, और मैं ऐसा भयंकर पाप कर बैठा।'

'अच्छा !.....उस वेश्या ने तुझे धन तो दे दिया न ?'
'नहीं स्वामीजी, धन भी हाथ नहीं लगा।'
'वेश्यायें तो छलना होती हैं। वह तुझे धन देगी भी नहीं।' उससे यों कहकर स्वामीजी ने उसे अपने पास से उतनी ही रकम देकर कहा—'अब तुरन्त भाग जाओ। कहीं आवेश में आकर मेरा कोई भक्त तुम्हारा अहित न कर बैठे।'

यह भी एक ही रही

स्वामी रामतीर्थ का बचपन का नाम तीर्थराम था। वे भारी आर्थिक कठिनाइयों का सामना करते हुए पढ़ते रहे और अन्ततः बी॰ ए॰ की परीक्षा में बैठने में सफल हो गये। गणित उनका प्रिय विषय था। बी॰ ए॰ की परीक्षा में गणित के प्रश्न-पत्र में 13 प्रश्न पूछे गये थे और उनमें से 9 प्रश्न हल करने को कहा गया था।

रामतीर्थ ने केवल 1 घण्टे में तेरहों प्रश्न हल कर डाले और अन्त में परीक्षक के लिए नोट लिखा—

'आप कोई भी 9 प्रश्न जाँच लें।'

यही तीर्थराम आगे चलकर विश्व प्रसिद्ध सन्त हुए।

धन्य हैं ऐसे आत्मविश्वासी ! धन्य हैं ऐसे परिश्रमी !!

❀

पत्थर के निशान

बोपदेव नामक छात्र संस्कृत पढ़ रहा था। किन्तु, संस्कृत-व्याकरण के कठिन सूत्रों को देखते ही वह घबड़ा जाता था। उसकी सामान्य बुद्धि सूत्रों के जाल में बुरी तरह उलझ गई। उसे विद्यालय में नित्य ही अपने गुरुदेव की फटकार सहनी पड़ती और अपने सहपाठियों का उपहास-भाजन बनना पड़ता।

उस व्यथा से व्यथित होकर एक दिन वह चुपचाप विद्यालय से निकल पड़ा। घर वापिस लौटने पर उसे अपने माता-पिता की प्रताड़ना का शिकार होना पड़ता, अतः उसने किसी अन्य स्थान पर जाना उचित समझा।

बिना किसी गन्तव्य का निश्चय किये, वह निरुद्देश्य चला जा रहा था। गर्मी का मौसम था। थोड़ी दूर चलने पर ही उसे प्यास ने सताया। मार्ग में एक कुआँ पर कुछ स्त्रियाँ पानी भर रही थीं। उसने उनमें से एक स्त्री से पानी पीने की इच्छा प्रकट की।

जब वह स्त्री कुएं से पानी खींचने लगी तो बोपदेव की नजर रस्सी की रगड़ से घिस जाने वाले पत्थरों पर पड़ी। उसने मन में सोचा — जब रस्सी के बार-बार के घर्षण से पत्थर जैसी कठोर वस्तु में गड्ढा पड़ सकता है तो क्या पुनः पुनः प्रयत्न करने पर मैं संस्कृत में निपुण नहीं हो पाऊंगा ?

बस ! इस क्रान्तिकारी विचार ने ही उसके जीवन को बदल दिया। पानी पीने के बाद महिला को धन्यवाद देकर वह

अपने विद्यालय को लौट पड़ा और विद्यालय पहुँचने पर एकाग्र-चित्त होकर उसने पूरी लगन से पढ़ाई प्रारम्भ कर दी।

फिर क्या था ! जिस व्याकरण के कठिन सूत्र उसके जी का जंजाल बने हुए थे, उन्हीं का स्मरण करना उसके लिए खेल हो गया। वह प्रसिद्ध व्याकरणाचार्य बना। उसने "मुग्ध-बोध" नामक विश्व-प्रसिद्ध व्याकरण-ग्रन्थ की रचना भी की।

चाहे विद्या का क्षेत्र हो या कला का ! सफलता प्राप्त करने के लिए केवल एक ही मूल मन्त्र है—कठिन परिश्रम ! कठिन से कठिन परिश्रम !!'

★

मैं लेता ही नहीं

भगवान बुद्ध को बोधिसत्व प्राप्त हो चुका था। उनकी वाणी से मानो रसामृत बरसता था। सुनने वाले मुग्ध हो उठते थे। वह जहाँ भी जाते, लोग उन्हें घेर कर खड़े हो जाते और सदुपदेश व प्रवचन करने का आग्रह करने लगते। दयालु बुद्ध को उनका आग्रह मानना पड़ता। वे किसी स्वच्छ स्थान पर बैठ जाते और लोगों को अपनी अमृत-वाणी सुनाने लगते।

भारद्वाज नामक एक ब्राह्मण-पुत्र ने उनका शिष्यत्व स्वीकार किया, तो भारद्वाज के एक सम्बन्धी को बुद्ध पर बड़ा गुस्सा आया।

वह तुरन्त जा पहुँचा उनके पास। जाते ही गन्दी-गन्दी गालियाँ बकने लगा। बुद्ध तो विनम्र थे ही, शान्त होकर उसकी गन्दी गालियाँ सुनते रहे और मन्द-मन्द मुस्कुराते रहे। जब वह गाली बक कर थक गया, तो बुद्ध से कहा—'क्योंरे कपटी

साधु ! गाली सुनकर भी तू भड़का क्यों नहीं ? मैंने तुझे इतनी गालियाँ दी हैं और तू है कि खीसें निपोर रहा है !'

बुद्ध ने नम्रता पूर्वक कहा—'ब्राह्मण देव ! आप एक बात बताइये कि आप मुझे जो वस्तु देना चाहते हो उसे मैं न लूँ तो वह कहाँ जायेगी ?'

'जायगी कहाँ ? मेरे पास ही रहेगी।' अकड़कर वह व्यक्ति बोला—'और फिर, मैं भला तुझ जैसे पाखण्डी को अपनी कोई वस्तु देने भी क्यों लगा ?'

'याद करो ब्राह्मणदेव ! आप मुझे कोई वस्तु देना चाह रहे हो और मैं उसे स्वीकार नहीं कर रहा हूँ। फिर तो आपकी वस्तु आपके पास ही रहेगी न ?'

'भला बताओ तो सही, मैं तुम्हें कौन-सी चीज देना चाह रहा हूँ ?' वह व्यक्ति फिर अकड़ा।

'गालियाँ दे रहे थे न, और मैं उन्हें ले नहीं रहा हूँ। इसलिए आपकी गालियाँ आपके पास ही रह रही हैं !'

भगवान बुद्ध की विवेक-पूर्ण यह बात सुनी तो वह व्यक्ति मारे लज्जा के पानी-पानी हो गया। बुद्ध के चरणों की रज अपने मस्तक से लगाता हुआ वह बोला—'महात्माजी, मुझे क्षमा करना।'

बुद्ध भगवान पूर्ववत मुस्कुराते रहे।

याद रखें—कटुवाणी सुनकर विचलित होना अपनी शक्ति को कम करना है और क्रोध से ऊपर उठना है—दैवी-शक्ति की ओर अग्रसर होना !

●

एकाग्रता

एक था लुहार । वाण बनाने की कला में अत्यन्त निपुण। उसके बने हुये वाणों को जो भी देखता, उसके मुख से बरवस 'वाह-वाह' फूट पड़ती ।

एक दिन जब वह अपने वाण बनाने में तल्लीन था, उसकी कर्मशाला के आगे से एक सम्पन्न व्यक्ति की बारात गाजे-बाजे और धूम-धाम के साथ निकली । किन्तु, उसने वह शोर-शराबा सुना ही नहीं—वह वाण बनाने में ही लगा रहा ।

थोड़ी देर बाद उसकी कर्मशाला के सामने से दत्ता त्रेय ऋषि निकले । तब तक वह अपना वाण बना चुका था और जिस तरह समाधिलीन रहने के बाद कोई साधु अंगड़ाई लेता है, उसी तरह अँगड़ाई ले रहा था ।

उससे दत्तात्रेय ने पूछा—'बन्धु, आपकी कर्मशाला के आगे से एक धनी व्यक्ति की बारात गई थी, उसे गये कितना समय बीत गया ?'

'महाराज ! मैं अपना वाण बनाने में जुटा था, इसलिए मैंने बारात को नहीं देखा, क्षमा करें ।' लुहार ने कहा ।

'हैं.....' दत्तात्रेय चौंके—'भाई, जब आप यहाँ मौजूद थे तो ढोल-तासों व तुरही आदि का शोर तो आपने सुना ही होगा ?'

'महाराज ! मेरा धन्धा ही मेरे लिए प्रभु-पूजा, अर्चना, वन्दना सब कुछ है । मैं जब अपने काम में जुटता, हूँ, तो उसी

का हो जाता हूँ। फिर मुझे शरीर की सुध भी नहीं रहती। बारात के विषय में क्या बता सकता हूँ।' लुहार ने सरल वाणी में कहा।

यह बात सुनी तो दत्तात्रेय ऋषि ने उस लुहार के चरण स्पर्श कर लिए और बोले—'आज से आप मेरे गुरु हुए, मैं भी अपनी साधना में इतना ही डूबने की चेष्टा किया करूँगा।'

❀

उचित व्यवहार

तब तक अब्राहम लिंकन राष्ट्रपति तो न ही बन पाये थे, किन्तु एक अच्छे नेता के रूप में प्रसिद्ध हो चुके थे। एक दिन वे किसी महत्वपूर्ण सभा में अपना व्याख्यान दे रहे थे। उस सभा में लिंकन के गाँव का एक कृषक भी बैठा था। लिंकन की किसी बात पर अत्यधिक प्रसन्न होकर वह किसान मंच पर जा पहुँचा और व्याख्यान दे रहे, लिंकन के कन्धे पर हाथ रख-कर बोला—'अरे अब्राहम ! तू तो बहुत होशियार हो गया है। तेरा व्याख्यान सुनने के लिए श्रोता टिड्डी-दल की तरह उमड़ पड़े हैं। शाबाश।'

देहाती वेष-भूषा वाले एक साधारण किसान को धड़-धड़ाता हुआ मंच पर चढ़ते देखकर सभा-आयोजक नाराज थे। जब उस वृद्ध को लिंकन महोदय से बेहूदे ढंग से बातें करते देखा तो उनका गुस्सा और भी तेज हो उठा। किन्तु वे लोग कोई अप्रिय बात करते, इसके पूर्व ही अब्राहम लिंकन ने बड़ी आत्मीयता से उस वृद्ध से हाथ मिलाया और सम्मानपूर्वक उसे

मंच पर लगी अपनी कुर्सी पर बिठाते हुए कहा—'चाचाजी, आप ! घर पर तो सब प्रसन्न हैं न ?'

'हाँ-बेटा, तेरी पत्नी और बाल-गोपाल भी आनन्द-मग्न हैं न ?'

'हाँ-चाचाजी, आपकी दया से सर्वानन्द है। धन्यवाद !' बड़े से यों कहकर अब्राहम लिंकन ने अपना अधूरा व्याख्यान आगे बढ़ाया।

कॉलेज में उच्च शिक्षा पाने वाले जो देहाती-छात्र अपनी मित्र-मण्डली के सामने, देहाती वेषभूषा वाले अपने पूज्य पिता का सही परिचय देने का भी साहस नहीं जुटा पाते, उनके लिए यह प्रसंग बहुत बड़ा सम्बल है और जो सामान्य नेता अहंकार में डूबकर अपने पूर्व परिचितों को देखकर नजरें फेर लेते हैं—उनके लिए करारा सबक।

वचन

भारत का प्रधान-मन्त्री चुने जाने के बाद लाल-बहादुर शास्त्री अपनी अस्सी वर्षीय वृद्धा माँ के पास गये और उनके चरण-स्पर्श करके कहा– 'माँ, मुझे आशीष दो। जिससे मैं अपनी जिम्मेदारी को ईमानदारी से निभा सकूँ।'

'बेटा। जैसे प्रत्येक माता की शुभ-कामना अपने बेटे के प्रति होती हैं, मेरी भी तेरे प्रति है। पर बेटा, दायित्व तो तुझे ही निभाना है। अब तेरा प्रत्येक कार्य देश को यशस्वी और और शालीन बनाने वाला होना चाहिए। भले ही उसके लिए

तुझे अपने जीवन का बलिदान देना पड़े। मुझे वचन दे, तू ऐसा ही करेगा ?'

'ऐसा ही होगा माँ !' शास्त्रीजी ने श्रद्धापूर्वक पुनः अपनी माँ के चरण छूते हुए कहा।

और, शास्त्रीजी ने अपने वचन का निर्वाह सचमुच अपने जीवन की बलि देकर ही किया। इस बात को संसार जानता है।

*

सहयोग

श्री रूजवेल्ट को अमेरिका के राष्ट्रपति चुने जाने पर श्रीमती रूजवेल्ट ने राष्ट्रपति-भवन (व्हाइट हाउस) को अपने पति की रुचि के अनुरूप स्वयं अपने हाथों से सजाया-सँवारा और जब वे कार्यालय को अच्छी तरह व्यवस्थि कर चुकी तो तो शासकीय कार्यों में भी रूजवेल्ट का हाथ बंटाने लगी।

एक दिन अमेरिका के प्रसिद्ध पत्र के सम्पादक का फोन आया तो श्रीमती रूजवेल्ट ने फोन उठाया। पत्र-सम्पादक ने फोन पर कहा—'मैं अमुक व्यक्ति बोल रहा हूँ। मुझे राष्ट्रपति की निजी सचिव मिस मालवीना से बातें करनी है।'

श्रीमती रूजवेल्ट ने मुस्कराकर कहा—'मिस मालवीना तो आज छुट्टी पर है। उनके स्थान पर मैं कार्य कर रही हूँ, यदि काम को मेरे योग्य समझें तो मुझे बता दें !'

'आप कौन बोल रही हैं ? सम्पादक ने प्रश्न किया।

'श्रीमती रूजवेल्ट।'

❀

बुरे समय को टालिये

शाम का समय था। महात्मा बुद्ध एक शिलापट्ट पर बैठे थे और डूबते हुये सूरज की ओर टकटकी लगाकर देख रहे थे। तभी उनका एक शिष्य उनके पास आया और बौखलाये हुए स्वर में बोला—'गुरुजी, रामजी नामक जमींदार ने मेरा अपमान किया है। आप तुरन्त चलें, उसे उसकी मूर्खता का सबक सिखाना होगा।'

महात्मा बुद्ध मुस्कराकर बोले—'प्रियवर ! तुम बौद्ध हो, सच्चे बौद्ध का अपमान करने की शक्ति किसी में नहीं होती। तुम इस प्रसंग को भुलाने की चेष्टा करो। जब प्रसंग को भुला दोगे। तो अपमान कहाँ बच रहेगा ?'

'महाराज ! उस धूर्त ने आपके प्रति भी अप-शब्दों का प्रयोग किया था। आप चलिये तो सही। आपको देखते ही वह अवश्य शर्मिन्दा हो जायगा और अपने किये की क्षमा माँग लेगा। बस, मैं सन्तुष्ट हो जाऊँगा।'

महात्मा बुद्ध समझ गये कि शिष्य में प्रतिकार की भावना प्रबल हो उठी है। इस पर सदुपदेश का प्रभाव नहीं पड़ेगा। कुछ विचारकर वे बोले—अच्छा वत्स ! यदि ऐसी बात है तो मैं अवश्य ही रामजी के पास चलकर उसे समझाने का प्रयास करूँगा। लेकिन.........'

'लेकिन क्या गुरुवर ! चलिये न, फिर तो रात घिर आयेगी।' शिष्य के स्वर में आतुरता और आग्रह दोनों थे।

'रात घिरेगी तो क्या ! रात के पश्चात् दिन भी तो उगेगा। यदि तुम वहाँ चलना आवश्यक ही समझते हो तो मुझे कल ही याद दिलाना। कल प्रातः काल वहाँ चले चलेंगे।'

बात आई-गई हो गई। शिष्य अपने काम में लग गया और महात्मा बुद्ध अपने काम में।

दूसरे दिन जब दोपहर होने पर भी शिष्य ने बुद्ध से कुछ न कहा तो बुद्ध ने स्वयं ही शिष्य से पूछा—'प्रियवर ! आज रामजी के पास चलोगे न ?'

'नहीं महाराज ! मैंने जब घटना पर फिर से विचार किया तो मुझे इस बात का ज्ञान हुआ कि भूल मेरी ही थी। मुझे अपने कृत्य पर भारी पाश्चाताप है। अब 'रामजी' के पास चलने की कोई जरूरत नहीं है।'

'यदि ऐसी बात है, तब तो अब अवश्य ही हमें 'रामजी' महोदय के पास चलना होगा। अपनी भूल की क्षमा-याचना नहीं करोगे, उससे ?' महात्मा बुद्ध ने हँसकर कहा।

कार्य-व्यस्तता

एक प्रसिद्ध भारतीय उद्योगपति 72 वर्ष की आयु में भी एक उत्साही युवक की भाँति अपने काम में जुटे हुए थे। एक दिन उनसे मिलने के लिए एक प्रसिद्ध पत्र का सम्पादक पहुँचा और उन्हें तेजी से काम निपटाते देखा तो आश्चर्य अभिभूत होकर उसने पूछा—'आपकी आयु कितनी हो चुकी है ?

उद्योगपति अपने मेहमान के प्रश्न का आशय समझ गए और मुस्कराते हुए बोले—'यदि आप मेरे जन्म के वर्ष से अब

तक का समय नापना चाहते है तो मैं बहत्तर वर्ष का हो चुका हूँ। वैसे काम करते समय मैं अङ्कों का क्रम बदल देता हूँ।'

'यानी स्वयं को सत्ताईस वर्ष का अनुभव करते है ?' पत्र-सम्पादक ने प्रश्न किया।

'आप ठीक समझे। मौत तो अपने निश्चित समय पर आयेगी ही, उसे तो नहीं टाला जा सकता, किन्तु बुढ़ापे के अनावश्य कलवादे को अपने ऊपर क्यों लादा जाय ?' उद्योग-पति ने सम्पादक से यों कहा और पुनः अपने काम में डूब गये।

मन्त्र

एक प्रसिद्ध लेखक के सम्मान में एक कॉलेज के छात्रों ने भोज का आयोजन किया। उस भोज में नगर के विभिन्न क्षेत्रों के गण्यमान्य व्यक्ति भी आमन्त्रित थे छात्रों द्वारा इतना भव्य आयोजन देखा तो लेखक महोदय प्रसन्न हो उठे। अपने स्वागत-भाषण में उन्होंने कहा, 'इस कॉलेज के छात्र उत्साही हैं और उत्साह प्रत्येक कार्य के लिए पहली शर्त है। मैं कामना और आशा करता हूँ कि मेरे छात्र बन्धुओं को भावी-जीवन में चाहे जिस क्षेत्र में काम करना पड़े, वे सफल होंगे।'

जब वे लेखक महोदय भाषण समाप्त कर चुके तो कुछ विद्यार्थियों ने कहा—'मान्यवर, अन्य किसी क्षेत्र में हम भले ही सफल हो जायँ, किन्तु सफल लेखक तो बन ही नहीं सकते।'

'ऐसा क्यों सोचते हैं आप ? लेखक ने प्रश्न किया।

'ऐसा सुना जाता है कि लेखन की प्रतिभा पैदा नहीं की जा सकती वह ईश्वरप्रदत ही होती है।' उन विद्यार्थियों ने कहा।

'झूठ! एकदम सरासर झूठ! मैं इसे स्वीकार नहीं करता।' लेखक महोदय ने तपाक से कहा।

'तब तो हम भी लेखक बन सकते है। आप हमें लेखक बनने का कोई गुरु-मन्त्र बताइये न ?' उन्हीं छात्रों ने लेखक महोदय से कहा।

उन छात्रों की यह बात सुनी तो लेखक मुस्कराया और बोला—'मन्त्र तो सभी कार्यों की सफलता का एक ही है—उत्साहपूर्वक अनवरत कठिन परिश्रम। यदि आप लोग सचमुच ही लेखक बनना चाहते हैं तो मेरे सामने बैठने में समय बरबाद मत करिये। अभी अपने कमरे में जाइये और लिखना शुरू कर दीजिये। लिखिये फाड़िये, फिर लिखिये फाड़िये और फिर······ ····जब तक आप अपने लेखन पर मुग्ध न हो उठें, लिखते रहिये। मैं तो यह जानता हूँ कि संसार के पचानवे प्रतिशत लेखक इसी मन्त्र का सहारा लेकर ख्यातनामा लेखक बन सके हैं।'

❀

जिम्मेदारी

अमेरिका का राष्ट्रपति मनोनीत होने पर जॉन कैनेडी से उसके साथियों ने पूछा—'अब आपकी सबसे उच्च अभिलाषा क्या है ?

एक क्षण विचार करके कैनेडी महोदय ने कहा—'जब तक यह जिम्मेदारी मेरे ऊपर रहे—मैं सचेष्ट, दृढ़, ईमानदार,

निरभिमानी और सच्चा राष्ट्रवादी रहकर एक जिम्मेदार राष्ट्रपति की भूमिका निवाह सकूँ, यही मेरी सबसे तीव्र आकांक्षा है।'

अद्भुत बलिदान

उस समय यूनान का शासक राजा कोडरस था। कोडरस अपनी पूरी प्रजा को अत्यन्त प्रिय था। यहाँ तक कि उसके समूचे राज्य में, उसका एक भी आलोचक और निन्दक न था।

उसी सर्वप्रिय राजा की राजधानी 'एथेन्स' पर अचानक शत्रु-राज्य की फौजों ने जोरदार हमला कर दिया और शत्रु ने चारों ओर यह अफवाह फैलादी कि उसकी सेना को एक प्रसिद्ध तांत्रिक का आशीर्वाद प्राप्त है—'या तो लड़ाई में ऐथेन्स का राजा मारा जायगा अन्यथा एथेन्स नष्ट हो जायगा।'

वह अफवाह इतने जोर-जोर से फैलाई गई थी कि एथेन्स की पूरी सेना व प्रजा के कानों में भी पड़ सके। अफवाह सुनी तो 'एथेन्स' की सेना का मनोबल गिर गया व प्रजा हतोत्साहित हो उठी। उधर शत्रुसेना का उत्साह देखते बनता था। उसके सैनिक उल्लास और उमंग में इस तरह डूबे हुए थे, मानो वे युद्ध जीत ही चुके हों।

राजा कोडरस, प्रजा का सच्चा शुभ-चिन्तक होने के साथ-साथ बुद्धिमान भी था। उसने शत्रुसेना के बल का अनुमान अपने गुप्तचरों द्वारा प्राप्त किया तो उसे ज्ञात हुआ कि शत्रु-बल उससे कई गुना अधिक है।

बस, उसने मन ही मन अपना कर्तव्य निश्चित किया और एक किसान का वेष बनाकर आधी-रात के समय शत्रु-छावनी की ओर जा निकला। सेना के अफसर नाचरंग में मस्त थे, तभी उस किसान ने उन्हें जा ललकारा।

एक सामान्य-सा किसान फौजी खेमे में घुसकर अण्ट-सण्ट बके, यह भला उन फौजियों को कहाँ बर्दाश्त होता? एक सिपाही ने तुरन्त म्यान से तलवार खींची और किसान की गर्दन धड़ से अलग कर दी।

ज्यों ही उस किसान की गर्दन कटकर जमीन पर गिरी कि एक अफसर उसे पहचान गया। वह घबड़ाकर बोला—'अरे, यह तो राजा कोडरस है!'

'हैं'...सभी लोग चौंकते हुए उस गर्दन पर झुक गये। तभी सेनापति बोला—'दोस्तो! भागो, जितनी जल्दी हो सके, भाग चलो। अब खैर नहीं! भविष्यवाणी थी 'या तो राजा मरेगा या 'एथेन्स' नष्ट होगा, सो राजा मर चुका है। अब एथेन्स का हम बाल भी बाँका न कर पायेंगे। हमें मुँह की खानी पड़ेगी।'

सेनापति की आज्ञा को भला कौन टालता? सैनिक नाचरंग को भूलकर अपने तम्बू-डेरे उखाड़ने लग पड़े। यों आत्माहुति देकर महान कोडरस ने अपनी प्रजा का अहित बचा लिया।

☆

अहंकार के गाल पर तमाचा

अपने प्रवास के दौरान गुरु नानकदेव का एक गाँव में डेरा लगा। अपने उपदेशामृत से उन्होंने सभी ग्राम-वासियों को समानता व भाईचारे का पाठ पढ़ाकर तृप्त किया।

उस गाँव में एक धनी जमींदार था। उसने गुरुनानक को अपने यहाँ भोजन करने का निमन्त्रण भेजा। गुरुजी उससे पूर्व ही एक निर्धन किसान को अपना भोजन भेजने की स्वीकृति दे चुके थे, अतः उन्होंने जमींदर का निमन्त्रण लेकर आने वाले व्यक्ति से कहा—'भाई, मैं किसी के घर जाकर भोजन नहीं करता, कोई भक्त मेरे ठिकाने पर जो रूखा-सूखा भोजन भेज दे, वही मेरे लिए पर्याप्त रहता है। और हाँ, आज के भोजन की स्वीकृति मैं एक भक्त को दे चुका हूँ।'

उस आदमी ने जब सारी बात जाकर जमींदार को बताई तो वह क्रोध से तिलमिला उठा—'मैं गाँव का जमींदर हूँ, मेरे रहते गुरुजी किसी अन्य का भोजन कैसे स्वीकार कर सकते हैं?' उसने तुरन्त अपनी पत्नी को आज्ञा दी कि वह स्वादिष्ट पूड़ी-पकवान तैयार करे।

जब भोजन तैयार हो गया तो वह स्वयं भोजन लेकर पहुँचा। संयोग से तभी वह निर्धन व्यक्ति भी मोटी-मोटी रोटियाँ और नमकीन चटनी लेकर पहुँचा था।

गुरु नानकदेव ने निर्धन व्यक्ति का खाना लिया और प्रेम से खाने लगे।

यह जमींदार का सरासर अपमान था। वह क्रोध से बिफरते हुए बोला—'गुरुजी, आप मेरे स्वादिष्ट भोजन को स्वीकार कीजिये। इसकी रूखी-सूखी रोटियों में क्या रखा है?'

'जमींदार साहब, यह सूखी रोटियाँ प्रेमामृत व श्रद्धास्नेह से सराबोर है, इनकी निन्दा क्यों करते हो?'

'मैं भी आपको प्रेम-पूर्वक भोजन कराने आया हूँ।' जमींदार ने कहा।

'नहीं, मेरे प्यारे भाई ! तुम्हारे भोजन में क्रोध और दम्भ का विषैला प्रभाव भरा है।' नानक ने मुस्कुराते हुए कहा।

यह तो जमींदार के मुख पर करारा तमाचा था। वह अकड़कर गरुजी को दुर्वचन बोलने लगा—'तुम साधु नहीं, ढोंगी हो ! यदि तुम्हारी बात में सचाई है तो उसे प्रमाणित करो।'

'मेरे प्यारे भाई, क्रोध बुरी चीज है ! इससे बचो। हम साधु लोग, आदमी के चेहरे से ही, उसके मनोभावों को ताड़ लेते हैं।'

'यह असत्य है ! सरासर पाखण्ड !' जमींदार गरजा।

जब उस जमींदार ने विवश किया तो गुरुजी ने एक हाथ में उसकी पूड़ियाँ लीं और दूसरे हाथ में गरीब की सूखो रोटियाँ। दोनों को मुट्ठियों में दबाया तो एक अद्भुत आश्चर्य दिखाई दिया।

गरीब आदमी को सूखी रोटियों में से दूध की धार बँध गई और जमींदार की रोटियों में से खून की बूंदें टपकने लगीं।

जमींदार को काटो तो खून नहीं। वह गुरुजी के चरणों में लोट-पोट होकर बोला—'मुझे क्षमा करो देव !'

'उठो पगले ! अपने इस गरीब भाई को गले लगाओ। यह भी उसी परमेश्वर की सन्तान है, जिसकी तुम हो। बिल्कुल तुम्हारा सगा भाई ! फिर ऊँच-नीच और छोटे-बड़े का भाव क्यों ?'

☆

खुराफात

एक महिला ने एक राजा के दरबार में जाकर अपने पति की शिकायत करते हुए कहा—'मेरा पति मेरे साथ अत्यन्त नीचता का बर्ताव करता है।'

'फिर, इससे मेरा क्या सरोकार ?' राजा ने कहा।

'महाराज, यह आपको भी गाली सुनाता रहता है।' महिला बोली।

'हुँ.........' राजा ने मुस्करा कर कहा—'मेरी गालियों से क्या तेरा सरोकार ?'

❀

कृतघ्नता

एक प्रसिद्ध चित्रकार था। उसके सैकड़ों शिष्य थे। और वह अपने सभी शिष्यों के प्रति अत्यन्त उदार था। एक बार उसके एक प्रिय शिष्य ने अपनी एक कला-कृति को एक प्रदर्शिनी में रखना चाहा, किन्तु उस चित्र में कुछ ऐसी कमियाँ थीं, जिन्हें उसका गुरु ही ठीक कर सकता था।

उस त्रुटिपूर्ण चित्र को लेकर वह अपने गुरु के पास पहुँचा और उनसे बोला—'गुरुजी, अपनी इस कृति को मैं प्रदर्शिनी में भेजना चाहता हूँ, किन्तु इस चित्र में कुछ ऐसी त्रुटियाँ

रह गई हैं, जिन्हें मैं ठीक नहीं कर पा रहा हूँ। कृपया आप अपने कर-कमलों से इस चित्र को सँवार दें।'

गुरुजी ने अपने शिष्य के चित्र पर नजर डालकर कहा—'शाबास! बहुत अच्छा चित्र बनाया है तुमने। यह अवश्य ही पुरस्कृत होगा।' इन शब्दों से शिष्य का उत्साह-बर्द्धन करने के बाद बिना एक क्षण की भी देर किये गुरुजी ने अपनी तूलिका उठाली और चित्र में कहाँ, क्या-क्या सुधार करना है, यह भली-भाँति शिष्य को समझा दिया। चित्र शिष्य को लौटाते हुए बोले-'तुम स्वयं अपने हाथ से ही चित्र को सँवार लेना और प्रदर्शनी में अवश्य भेज देना।'

गुरु को प्रणाम करके शिष्य लौट गया। अपने घर पहुँचकर उसने गुरुजी के निर्देशानुसार अपने चित्र में सुधार किया और यथा-समय प्रदर्शनी में प्रदर्शित होने के लिए भेज दिया।

प्रदर्शनी में उसी कलाकृति को प्रथम पुरस्कार मिलने का समाचार सुना तो गुरुजी प्रसन्न हो उठे। वे स्वयं अपने शिष्य के घर पहुँचे और अत्यन्त स्नेह पूर्वक उससे बोले-'शाबास बेटे! तुम्हारा चित्र पुरस्कृत हुआ, यह जानकर मैं अत्यन्त प्रसन्न हूँ। इस घटना से तुम्हारी कला विकास की ओर तेजी से अग्रसर होगी। हाँ, तुमने चित्र में मेरे निर्देशानुसार सभी आवश्यक सुधार तो कर लिये थे न ?'

शिष्य के मन में दुर्भावना जागी! चित्र पुरस्कृत तो हो ही चुका है, व्यर्थ में गुरुजी को सम्मान में भागीदार क्यों बनाया जाये। वह बोला—'अजी-कहाँ! गुरुजी, इतना अवकाश ही न मिल सका कि मैं चित्र में सुधार कर पाता। मैंने तो 'ज्यों का त्यों' ही चित्र भेज दिया था।'

'अच्छा ! तब तो और भी अच्छी बात है।' गुरुजी ने कहने को तो कह दिया, किन्तु वे ताड़ गये कि शिष्य झूठ बोल रहा है। भला इतना त्रुटिपूर्ण चित्र पुरस्कृत हो सकता था ? कदापि नहीं।'

वे कृतघ्न शिष्य से बिना कुछ कहे, वापिस लौट गये।'

अनोखी सजा

इङ्गलैण्ड के मुख्य न्यायाधीश के सम्मुख अपने ही सम्राट (एडवर्ड सप्तम) अपराधी के रूप में खड़े थे। सम्राट ने स्वयं अपने अपराध का पूरा विवरण देते हुए न्यायाधीश से न्याय की माँग की।

न्यायाधीश ने सम्राट की बात सुनी तो एकदम सन्न रह गया। उसकी समझ में न आया कि सम्राट को क्या सजा दी जाय। किन्तु बिना कुछ व्यवस्था दिये भी स्थिति को टाला नहीं जा सकता। न्यायाधीश ने मन ही मन विचार के बाद अपना निर्णय दिया—'चूँकि मामला सम्राट का है, अत: इसकी न्याय-प्रक्रिया भी विशेष ढंग की ही होनी चाहिए। मैं चाहता हूँ कि इस मामले को उन सब न्यायालयों को भेजा जाय, जो सम्राट की शासन-सीमा में आते हों। फिर न्यायाधीशों के बहु-मत को ही उचित ठहराया जाय।'

सम्राट समझ गया कि न्यायाधीश ने चतुराई से अपनी बला दूसरी के सिर मढ़ दी है, किन्तु मुख्य न्यायाधीश के निर्णय को भला चुनौती कौन देता ? जिन-जिन देशों में एडवर्ड सप्तम

का शासन फैला था, उन-उन सब देशों के न्यायालयों में वह काण्ड न्याय के लिए भेज दिया गया।

एक निश्चित समय के भीतर सब अदालतों ने अपना-अपना निर्णय इङ्गलैण्ड भेज दिया, किन्तु उन सभी फैसलों में सम्राट को क्षमा किया गया था, यद्यपि युक्तियाँ, तर्क और दाँव-पेच सबके भिन्न थे। हाँ, मद्रास उच्च न्यायालय के तत्कालीन उच्च न्यायाधीश का फैसला सबसे अलग और अपने-आप में अनूठा था।

विद्वान न्यायाधीश सर टी० मुथ्थुस्वामी ने अपना निर्णय लिखा—'हमें सर्वप्रथम तो यह बात भूलनी है कि फैसला सम्राट के केस का है। क्योंकि कानून की नजर में न कोई सम्राट है और न भिखारी!

फिर न्यायालय का यह भी कर्त्तव्य हो जाता है कि ऐसी विषम स्थिति में फैसला इस ढंग से दिया जाय कि वह फैसला एक उदाहरण बन सके। मेरे विचार से सम्राट का ताज उतार कर एक करोड़ सिक्कों में उन्हें नगे सिर दिखाया जाय और उन सिक्कों को पूरे साम्राज्य में फैला दिया जाय। मैं समझता हूँ कि सम्राट की शोभा भी इसी में है कि वे फैसले को शिरोधार्य करें।'

सम्राट को सर मुथ्थुस्वामी का ही फैसला मान्य रहा। टकसाल में एक करोड़ मुद्रायें ढाली गयीं और साम्राज्य भर में चालू की गयीं।

❀

विलक्षण साधना

घने जंगल के बीच एक भील परिवार रहता था। उस परिवार के एकलव्य नामक भीलकुमार ने जब किशोरावस्था में प्रवेश किया तो उसकी यह मनोकामना हुई कि अपने समय का महान धनुर्धर बने।

एक दिन उसने अपना वह विचार अपने पिता को सुनाकर कहा—'पिताजी, मुझे धनुर्विद्या में पारंगत होने के लिए कोई सुयोग्य गुरु चाहिए। आप किसी योग्य गुरु का पता–ठिकाना बताइये।'

जहां भील को अपने लगनशील पुत्र की योग्यता का ज्ञान था, वहीं वह अपनी सामाजिक परिस्थिति को भी समझता था। भला-भीलकुमार को कोई धनुराचार्य अपना शिष्य क्यों बनाने लगा। वह दु:खित स्वर में बोला—'बेटे ! हम भील हैं। यह विशाल वन ही हमारा लीला-क्षेत्र है। यदि तुम्हें किसी गुरु ने उचित शिक्षा देकर कुशल तुम्हें धनुर्धर बना भी दिया तो उस निपुणता का, उस कला का प्रदर्शन कहाँ करोगे ? कैसे करोगे ?'

'पिताजी, हम बनवासी हैं। बन में ऐसे सैकड़ों-हजारों वृक्षों को दिनरात देखते हैं, जो अपने सुगन्धित पुष्पों की गन्ध अपने स्थान पर स्थिर रहकर ही बाँटते हैं। उस सुगन्ध के सम्पर्क में संयोग से जो भी आजाये, प्रसन्न होकर ही लौटता है। इसी तरह मैं भी वाणविद्या में पारंगत होना भर चाहता

हूँ। उस विद्या का प्रदर्शन करके यश कमाने की मेरी लालसा नहीं है।

भीलराज अपने पुत्र की लगनशीलता व दृढ़-निश्चय से परिचित था ही, उसे बताना पड़ा—'वत्स, इस समय आचार्य द्रोण ही धनुर्विद्या के महा पण्डित हैं। किन्तु.....'

'किन्तु क्या, पिताजी ?'

'बात यह है, बेटे कि द्रोणाचार्य इस समय राजकुमारों के शिक्षक हैं, वे तुम जैसे भीलकुमार को शिक्षा नहीं देंगे।'

'फिर भी मैं उनसे विद्या ग्रहण करने का प्रयास करूँगा–पिताजी।' पिता से यों कहकर भीलकुमार गुरु द्रोण से मिलने चल दिया।

द्रोणाचार्य के पास पहुँचकर भीलकुमार ने श्रद्धापूर्वक उनके चरणों में प्रणाम किया और फिर अपना मन्तव्य उन्हें बताया।

द्रोणाचार्य ने राजकुमारों के साथ भीलकुमार को वाण-विद्या सिखाने में असमर्थता प्रकट की। किन्तु इससे भीलकुमार निराश नहीं हुआ। उसने मन ही मन द्रोणाचार्य को अपना गुरु स्वीकार कर लिया और उनसे मानसिक निर्देश लेकर वाण-संचालन का अभ्यास करने लगा।

निरन्तर मनोयोग पूर्वक की गई साधना रंग लाई और फलस्वरूप भीलकुमार ने वाण-सँचालन में अद्भुत कुशलता प्राप्त करली।

एक दिन संयोग की बात ! जंगल में भीलकुमार एकलव्य वाण-संचालन का अभ्यास कर रहा था। तभी गुरु द्रोणाचार्य अपने राजकुमार शिष्यों (पाण्डव और कौरवों) के साथ वहाँ से निकले। अर्जुन का प्रिय कुत्ता भी उसके साथ था। उस कुत्ते ने काले-कलूटे एकलव्य को देखकर जोर-जोर से भौंकना आरंभ कर दिया। एकलव्य ने आव देखा न ताव, तुरन्त लगातार वाण

चलाकर कुत्ते का समूचा मुख बाणों से भर दिया और क्या मजाल कि कुत्ते को खरोंच भी लगे।

यह सब इतनी तीव्रता के साथ हुआ कि सभी राजकुमार आश्चर्य से ठगे से रह गये। बाण-संचालन की उस योग्यता को देखकर आचार्य द्रोण भी आश्चार्य अभिभूत हो उठे। वे एकलव्य के पास पहुँचे उन्होंने स्नेहपूर्वक उससे पूछा—'वत्स तुम्हारी लगन, तुम्हारा अभ्यास, तुम्हारी कला धन्य है। मैं हृदय से तुम्हारा प्रशंसक हूँ।'

अपने गुरु को अपने सामने देखा तो एकलव्य आनन्द में डूब गया। श्रद्धा से गुरु-चरणों में नतमस्तक होकर वह बोला-'आपके आशीर्वाद का ही यह फल है गुरुवर ?

'मेरा आशर्वाद ?' चौकते हुए द्रोण बोले।

'हाँ भगवन, मैं आपके श्री चरणों में विद्या पाने की लालसा से गया था। यद्यपि आपने अपने समीप रखकर मुझे विद्या देना स्वीकार नहीं किया था किन्तु मैंने आपको गुरु मानकर ही विद्याभ्यास किया है। अतः आप ही मेरे गुरु हैं।'

द्रोणाचार्य को यह सुनते ही स्मरण हो आया। उन्होंने स्नेहपूर्वक एकलव्य की पीठ थपथपा कर आशीर्वाद दिया।

एकलव्य को गुरुजी का अशीष मिला तो वह प्रसन्न हो उठा किन्तु अर्जुन की ईर्ष्या जाग उठी। वह अपने गुरु से बोला—'गुरवर, मैंने आपके श्री चरणों में बैठकर विद्या पाई है और एकलव्य ने केवल अपने मन से ही आपको गुरु स्वीकार किया है। फिर भी.........'

'मैं सब कुछ समझ गया वत्स।' अर्जुन से यों—कहकर द्रोणाचार्य ने मन ही मन कुछ सोचा। फिर वे एकलव्य से बोले-'वत्स ! तुमने मुझे गुरु माना है। गुरुदक्षिणा नहीं दोगे ?'

'आप आज्ञा करें प्रभु ! मेरे पास अपना कुछ नहीं, सब आपका ही है।'

'अच्छी तरह विचार लो, मैं जो मानूंगा, तुम्हें देना होगा।'

'मैं तैयार हूँ प्रभु। आप आज्ञा करें।'

'यदि मैं तुम्हारे दाहिने हाथ का अँगूठा माँग लूँ तो ?'

गुरु का कथन पूरा होना था कि एकलव्य ने तुरन्त अपने हाथ का अँगूठा काटकर गुरु-चरणों में रख दिया।

एकलव्य की निष्ठा देखी तो द्रोण ने स्नेहाभिभूत होकर उसे आलिंगन-बद्ध कर लिया। उनकी आँखों में प्रेमाश्रु छलक आये, गला रुँध गया। सभी राजकुमारों ने भी भीलकुमार को गले से लगाकर प्यार किया।

रूँधे कण्ठ से द्रोण बोले—'वत्स, तुम्हारा त्याग सराहनीय है। तुम्हें अमरत्व मिले, यह मेरा आशीष है।

'मैं धन्य हुआ भगवन, मेरी साधना सफल हुई।' यों कहकर एकलव्य ने पुनः गुरुचरणों में प्रणाम किया।

'प्रिय एकलव्य ! मुझ से भूल हो गई। मैंने तो तुम्हारे दाहिने हाथ को ही बेकार बना दिया।

'आप ऐसा न सोचें गुरवर ! अभी मेरे दाहिने पैर का अँगूठा तो है, मैं उसी से बाण-संचालन का अभ्यास करूँगा। यदि मैं यह साधना कर सका तो वह तो और भी विलक्षण सिद्ध होगी।

'हैं.........आश्चर्य से गुरु चौंके, फिर उन्होंने एकलव्य को आशीष दिया तुम्हारी साधना सफल हो।'

गुरु का आशीष और शिष्य की साधना, दोनों जब मिले तो एकलव्य ने पैर के अँगूठे से ही बाण संचालन में निपुणता प्राप्त कर ली।

अपने समय का वह महा धनुर्धर माना जाता था। ❁

योद्धा सन्यासी

बात तब की है—जब वर्द्धमान महावीर सन्यास लेकर प्रसिद्धि पा चुके थे। एक दिन सन्ध्या के समय वे एक उद्यान में बैठे हुए अपने कुछ प्रिय शिष्यों को ज्ञानामृत पिला रहे थे। उन शिष्यों में एक ऐसा व्यक्ति भी आ बैठा था, जो वर्द्धमान के सिद्धान्तों का विरोधी था और सदैव उनके सिद्धान्तों की खिल्ली उड़ाया करता था।

जब वर्द्धमान अपना प्रवचन समाप्त कर चुके तो उस व्यक्ति ने उन्हें नीचा दिखाने की नीयत से चुटकी लेते हुए कहा—'महाराज, सचमुच आपकी वाणी से अमृत का झरना झरता है। आप वास्तव में धर्मावतार हैं। किन्तु.......'

'किन्तु क्या ?' एक शिष्य ने उसे चुप होते देखकर पूछा।

'वर्द्धमान ने स्वधर्म का उल्लंघन भी किया है। यों कहते हुए उस व्यक्ति ने दीर्घ निश्वास छोड़ा।

'हैं.......क्या कहते हो आप ? भगवान महावीर और धर्मोल्लंघन ! कदापि नहीं।' घबराहट के स्वर में अनेक शिष्य एक साथ बोल उठे।

वह व्यक्ति मुस्कराते हुए बोला—'वर्द्धमान स्वयं उस भूल का अनुभव करते हुए अपने मन में अवश्य ही पाश्चात्ताप भी करते होंगे।

पर वह भूल है कौन सी एक शिष्य झुंझलाया।

'भगवान महावीर का अवतार क्षत्रिय-कुल में हुआ हैं। अतः इन्हें क्षात्रधर्म का पालन करके अपने शत्रुओं से युद्ध करके

विजयश्री प्राप्त करनी चाहिए थी, किन्तु यह कर्मच्युत होकर फँस गये—ब्राह्मणों जैसे पाखण्ड में।' उस व्यक्ति ने कहा।

उसकी बात सुनकर वर्द्धमान स्वयं मुस्कराते हुए बोले—'प्रिय बन्धु! आपने मुझ स्वकर्म का स्मरण दिलाया, इसके लिए साधुवाद! पर प्यारे भाई! आप सच मानो, मैं आज भी युद्धरत हूँ। हाँ, विजयश्री अभी तक शायद नहीं मिल पाई है।'

'क्या कह रहे है आप....?' आश्चर्य से चौंकते हुए वह व्यक्ति बोल उठा।

'हाँ प्रियवर! मैं सत्य कह रहा हूँ। काम, क्रोध मद, लोभ, परनिन्दा आदि महान शत्रुओं के साथ युद्धरत हूँ। और इस प्रकार मैं आज भी क्षात्र-धर्म में ही प्रवृत्त हूँ।'

भगवान के मुख से यह सुना तो वह व्यक्ति न केवल निरुत्तर ही हुआ, बल्कि श्रद्धांविभोर होकर उनका शिष्यत्व ही ग्रहण कर बैठा।'

*

मानव-ऊर्जा

जब हम अपनी ही तरह के हाड़-मांस के पुतलों द्वारा दुर्गम पहाड़ों की चोटी पर पत्थरों को तराशकर बनाये गये विशाल भवनों को देखते हैं तो बुद्धि चकरा जाती है, हजारों फीट ऊँचाई की सीधी खड़ी चट्टानों पर जब अपनी तरह के सामान्य कद वाले मानव की विजय की घटना पढ़ते या सुनते हैं, तो आश्चर्य से रौंगटे खड़े हो जाते हैं। मीलों लम्बी इंगलिश चैनल या समुद्री भाग को तैरकर पार करने में सफलता पाने वालों की चर्चा सुनकर ही रूह काँपने लगती है। फिर भी

साहसी वीर-वीरांगनायें इन कौतुकों में नित्य निमग्न हैं, वह भी किसी के दवाब या भय से नहीं—स्वेच्छा से—प्रसन्नता पर्वक। आखिर इसका रहस्य क्या है—यदि इस पर विचार करें तो केवल एक ही तत्व हाथ आयेगा, और वह हैं—इच्छा-शक्ति। वस्तुत: 'इच्छा-शक्ति ही महान कार्यों के सम्पादन की ऊर्जा है।'

★

सिद्ध के लक्षण

रामकृष्ण परमहंस से किसी ने पूछा—सिद्ध के क्या लक्षण है ?'

उन्होंने कहा—'जिस प्रकार चावल पक जाने पर नरम, कोमल, कण रहित, मृदु और अलग-अलग हो जाता है, इसी प्रकार साधक का हृदय जब साधना के द्वारा परिपक्व होकर विनय-मधुर, कोमल, निरभिमान और असंग हो जाय, तब उसे सिद्ध कहते हैं।

★

ना जाने किस वेश में

वेग की वर्षा हो रही थी वायु के प्रबल झकोरे चल रहे थे। बिजली की तड़क बार-बार हो रही थी, ऐसे कुसमय में रात को फिलाडेल्फिया के एक छोटे से होटल में एक अधेड़ दम्पति ने प्रवेश किया।

'रात बिताने को एक कमरा चाहिये। काउण्टर पर जो व्यक्ति था, उससे आगत पुरुष ने कहा।

क्लर्क ने बतलाया—'यहाँ कहीं स्थान नहीं है। सब कमरे भरे हुए हैं।'

'हे भगवान !' पुरुष ने लम्बी श्वास ली—'हम यहाँ के सब होटलों में घूम आये है, कहीं स्थान मिलता नहीं है।'

इसी समय बड़ा भयंकर शब्द हुआ बिजली की चमक के बाद। डरकर स्त्री ने पति का हाथ पकड़ लिया। होटल के क्लर्क ने धीरे से कहा—'यहाँ का एक-एक कमरा भर चुका है, किन्तु ऐसी रात्रि में आप जायेंगे भी कहाँ। क्या आप दोनों मेरे कमरे में रहना पसन्द करेंगे ?'

'और तुम ?'

'मेरी चिन्ता आप मत करें। मैं अपने आप अपनी निभा लूँगा। यहाँ कहीं मेज पर मैं सो सकता हूँ, किन्तु""।'

'किन्तु क्या ?' यात्री ने पूछा।

'मेरा कमरा बहुत छोटा है और बहुत साधारण बिछौना है उसमें। आपको वह रुचेगा ?'

'ओह !' आगत पुरुष तो क्लर्क के इस भाव से ही गद्‌गद् हो गया। वे दोनों रात्रि में उस क्लर्क के कमरे में सोये और क्लर्क रात में मेज पर भोजन-हॉल में पड़ा रहा। सवेरे वे दम्पति विदा हो गये।

थोड़े दिनों पीछे उस क्लर्क के नाम एक पत्र आया। उस पत्र में उसे न्यूयार्क आने का निमन्त्रण था और वहाँ का रिटर्न टिकट भी था।

क्लर्क न्यूयार्क पहुँचा तब उसे पता लगा कि उस वर्षा की रात्रि में उसके होटल में शरण लेने वाले जिस व्यक्ति ने उसे

निमन्त्रित किया है वह व्यक्ति है—अमेरिका का प्रसिद्ध न्यायाधीश विलियम वेल्फोर्ड आष्टो।

मि वेल्फोर्ड उस क्लर्क को अपने साथ न्यूयार्क के एक प्रधान मार्ग पर ले गये। वहाँ पाँचवें एवेन्यू के चौंतीसवें मार्ग के मोड़ पर विशाल राजभवन जैसा भवन खड़ा था उस पर बोर्ड लगा था—वेल्फोर्ड आष्टोरिया होटल।

मि० वेल्फोर्ड ने उस क्लर्क से कहा—'यह होटल मैंने केवल तुम्हारे लिए बनवाया है। तुम आज से इस होटल के मैंनेजर हो।'

'मैं बहुत छोटे होटल का साधारण क्लर्क। इतना बड़ा दायित्व मैं सम्हाल नहीं········।'

'तुममें मनुष्यता है। वेल्फोर्ड ने क्लर्क को होटल में हाथ पकड़कर ले जाते हुए कहा—'बड़े से बड़े दायित्व को सम्हालने के लिए इतना पर्याप्त है।'

❀

फरार कौन ?

न्यायाधीश के पद पर हेरिस की नवीन नियुक्ति हुई थी। वह एक किसान का पुत्र था और कुछ दिन पादरी भी रह चुका था। उसकी विद्वता, उदारता, सहृदायता की प्रसिद्धि से आकर्षित होकर सम्राट ने उसे यह पद दिया था।

'श्रीमान्, रोम के शासन-विधान में फरार के लिए बहुत

कठोर दंड बताया गया है।' न्यायाधीश बनने के सातवें दिन हेरिस रोम के सम्राट मार्क क्योरेलियस की सेवा में उपस्थित हुआ और सम्राट की अनुमति प्राप्त होने पर उसने पूछा—'लेकिन मैंने पूरा विधान देख लिया, उसमें फरार की कोई भी परिभाषा नहीं की गयी है। फरार किसे माना जाय ?'

'जो अभियुक्त सरकारी बन्दीगृह से भाग निकले हों। सम्राट ने कहा—'और जो दास अपने स्वामी के यहाँ से भाग' जाय अपना कर्तव्य त्याग कर।'

'पहली परिभाषा के सम्बन्ध में कोई विकल्प नहीं हो सकता।' हेरिस ने फिर प्रार्थना की 'किन्तु यदि सम्राट आज्ञा दें, दूसरी परिभाषा के सम्बन्ध में कुछ निवेदन करना चाहूँगा।

'क्या कहना है तुम्हें ?' सम्राट ने पूछा।

'हम सब परमात्मा के दास हैं। दैवी विधान ही हम सबका स्वामी एवं नियन्ता है।' न्यायाधीश हेरिस ने गम्भीरता पूर्वक कहा—'वे सब लोग जो अपने उचित कर्तव्य का पालन नहीं करते, सदाचार की मर्यादा को तोड़ते हैं, फरार माने जाने चाहिएं। जो जीवन में प्राप्त परिस्थिति से सन्तुष्ट नहीं रहते, बेचैन और क्रोधी हैं, परिवार तथा दूसरों से रूठे हैं, उनसे बिगाड़ कर लेते हैं, कर्तव्य-पालन से भागते हैं, फरार ही कहे जायेंगे।'

पूरी राजसभा में सन्नाटा छा गया। सम्राट स्थिर दृष्टि से न्यायाधीश की ओर देख रहे थे। न्यायाधीश कह रहा था—'जो चाहते हैं कि यह घटना ऐसी न हो या न हुई होती तो अच्छा होता, वे दैवी विधान से भागने वाले हैं उन्हें फरार मानना चाहिये।'

तुम ठीक कहते हो।' सम्राट ने धीरे से कहा—'दैवी-

विधान स्वयं इसका दण्ड देता है। ऐसे लोगों को सुख-शान्ति प्राप्त नहीं होती। उनका जीवन असन्तुष्ट व्यतीत होता है। वे परमात्मा से दूर होकर अन्धकार में जाते है। हम सब ऐसी भूल कुछ-न कुछ करते रहते हैं ?' सम्राट ने स्वीकार किया।

उसी दिन रोम के शासन विधान में फरार की परिभाषा राजकीय बन्दीगृह से भागे व्यक्ति के लिए स्थिर कर दी गयी और सम्राट ने कहा कि भागे हुए दासों के लिये दंड का निश्चय करके उसे दंड सहिता में जोड़ दिया जायगा।

**